सन्मार्ग दिवाकर आचार्य विमलसागर जी महाराज की ८९वीं
जन्म जयन्ती के उपलक्ष में

धर्म मार्ग सार

[अरनेरिच्चारं]

आचार्य मुनैप्पाडियार

अनुवादक

पं० श्री मल्लिनाथ शास्त्री, मद्रास

श्री नश्नावत पवन कुमार जी, श्री ऋषभ कुमारजी
सुपुत्र श्री देवचन्द जी नश्नावत

लोहारिया बाँसवाड़ा वालो की तरफ से
सप्रेम भेट

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् पुष्प संख्या—२

आशीर्वाद : ***आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज***

निर्देशिका : ***गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माताजी***

संयोजन : **ब्र० प्रभा पाटनी B.Sc., LL. B.**

ग्रन्थ : **धर्म मार्ग सार** (अरनेरिच्चारं)

प्रणेता : **आचार्य मुनैप्पाडिपार**

अनुवादक : पं० मल्लिनाथ शास्त्री

संस्करण : तृतियावृत्ति
वीर निर्वाण सं० २५३० सन् २००४

पुस्तक प्राप्ति स्थान : (१) आचार्य श्री भरतसागर जी महाराज संघ
(२) दिगम्बर जैन महासभा कार्यालय, ऐशबाग, लखनऊ
(३) बीसपंथी कोठी श्री सम्मेदशिखरजी
(४) अनेकान्त सिद्धांत समिति, लोहारिया,
जिला–बांसवाड़ा (राजस्थान)

मूल्य : ३०-०० रुपये

मुद्रक : **बाबूलाल जैन फागुल्ल**
महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी–१०
फोन : २२७६२१४

समर्पण

परम पूज्य सन्मार्ग दिवाकर आचार्य श्री
१०८ विमलसागर जी महाराज के
पट्ट शिष्य
मर्यादा-शिष्योत्तम
ज्ञान-दिवाकर
प्रशान्तमूर्ति
वाणीभूषण
भुवनभास्कर
समतामूर्ति
गुरुदेव परम पूज्य
आचार्यश्री १०८ भरतसागर जी महाराज के
कर कमलों में सादर
समर्पित

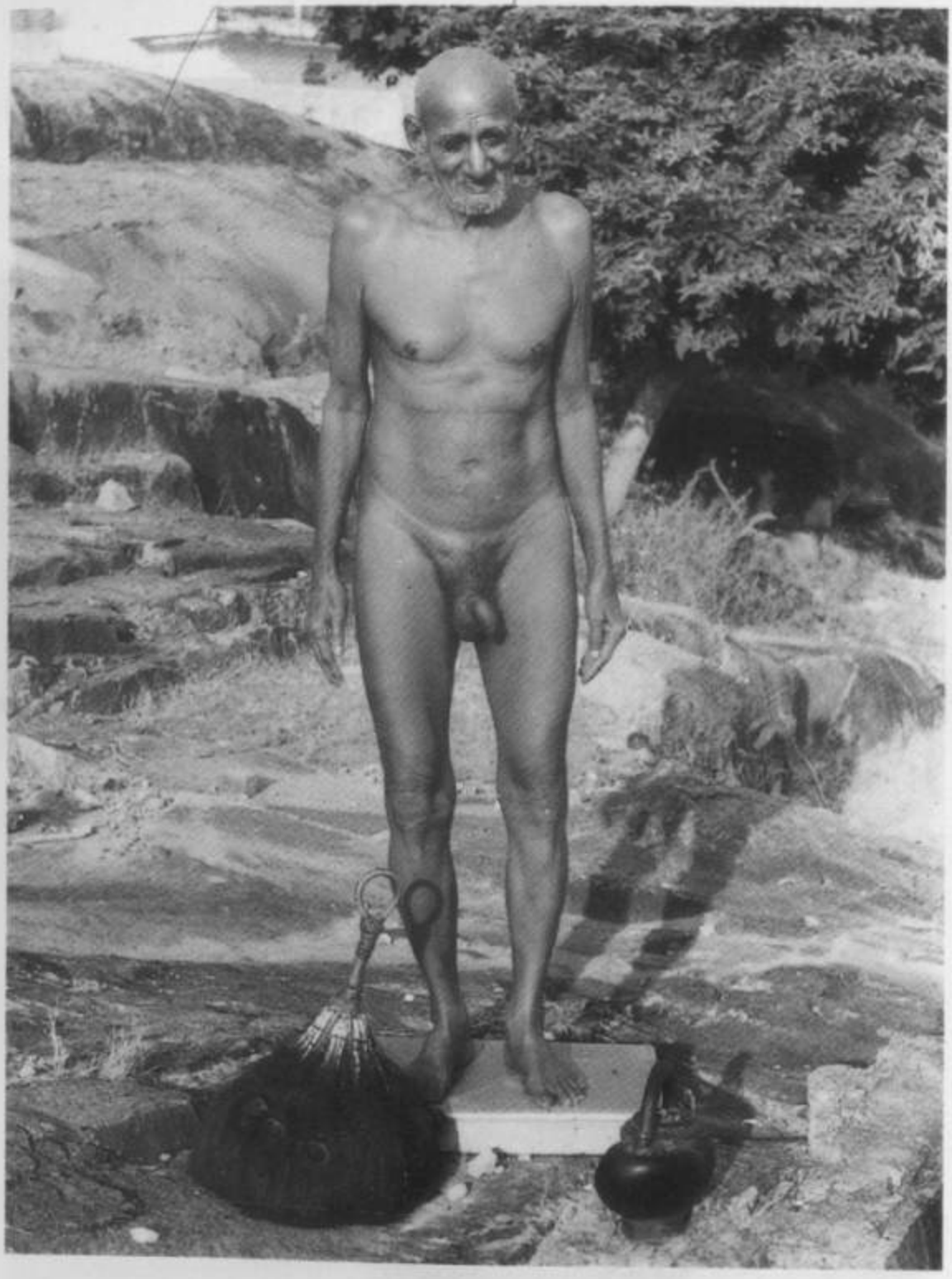

आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज

ग्रन्थकर्ता का परिचय एवं महत्त्व

यह 'अरनेरिच्चार'' (धर्म मार्ग सार) दिगम्बर जैन समय के 'मुनैप्पाडियार' नामक महान आचार्य से विरचित नीति प्रधान ग्रन्थ है। इसमें कुल 226 पद्य हैं। इस ग्रन्थ के पद्य को तमिल भाषा में वेण्वा कहते हैं। चौपाई को तमिल में वेण्वा कहा जाता है। वेण्वा पद्य, भाव और रूपरेखा आदि से ओत-प्रोत होते हैं। इस ग्रन्थ के आचार्य की कुशलता यह रही है कि धर्म रूपी आभूषण में नीति रूपी हीरे पन्ने और जवाहरात को जमा दें तो कोई भी व्यक्ति धर्म को अलग कर उदासीन भाव नहीं दिखा सकता। केवल धर्म मात्र रहे तो वह मलद्वेष का कारण बन सकता है। परन्तु उसमें नीति का समावेश हो जाय तो उसे कोई भी अग्राह्य न समझ कर अलग नहीं कर सकता। बल्कि सारे के सारे चाव से स्वीकार करने लग जायेंगे। बस! तमिलनाडु में नीतिप्रधान जैन धर्म ग्रन्थों की यही हालत नजर आ रही है।

इस ग्रन्थ में जिनेन्द्र भगवान, जिनवाणी और जैन धर्म आदि पर अच्छे ढंग से विवेचन किया गया है। मगर इसका प्रतिपादन भिन्न-भिन्न स्थान पर है। अलावा इसके ग्रन्थ में प्रतिपादित लौकिक धर्म, सदाचार, सत्यवृत्ति, सद्विचार, सदगृहस्थी आदि के विषय में जो-जो पद्य कहे गये हैं वे सबके सब, सारे मत-मतान्तर वालों से ग्रहण करने योग्य हैं और ग्रहण करते भी हैं। आचार्य ने शिक्षाप्रद विषयों को सुन्दर, सुगम और ललित मार्ग से व्या-वर्णित कर लोगों को एकदम मुग्ध कर दिया है। यह बात प्रशंसनीय ही नहीं अपितु आदरणीय भी है, जहां-जहां उपमा सहित जो विवेचन है वह सबके मन मन्दिर में चिरस्मरणीय वस्तु बन जाता है, कहने वाले और सुनने वाले दोनों मुग्ध एवं तन्मय हो जाते हैं। यही इसकी तारीफ की बात है।

उक्त आचार्य एवं ग्रन्थ के काल के निर्णय में कुछ कठिनाइयां महसूस होती हैं। इस महान् ग्रन्थ के रचियता कौनसे जमाने के हैं ? उनके माता-पिता कौन हैं ? लोकप्रिय कवि से रचे गये अन्य ग्रन्थ कौन-कौन से हैं ? इन सबका पता ठीक ढंग से नहीं चलता। फिर भी (अन्य मताबलम्बी) संघ काल के कम्बरामायण आदि ग्रन्थों से कुछ पद्यों को संग्रह पर 'परत्तिरदु' की रचना हुई है। उसमें इस ग्रन्थ के पद्य भी पाये जाते हैं। वास्तव में कम्बरामायण का काल बारहवीं सदी का माना जाता है। अत: यह ग्रन्थ उससे भी पुराना मानने में कोई अतिश्योक्ति नहीं हो सकती।

उक्त ग्रन्थ में आचार्य महाराज के द्वारा अरहन्त भगवान के उपदेशात्मक मणि-मार्णिक्यमय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को आधारशिला बनाकर गृहस्थ धर्म और यति धर्म का विवेचन अत्यन्त मनोज्ञरूप में किया गया है। ग्रन्थ कर्त्ता महाशय ने सभी विषयों को अपनी मधुरतम तमिल भाषा में (तमिल शब्द का अर्थ है मधुर) अतीव्र रोचकता के साथ अभिव्यक्त किया है। ग्रन्थ के अध्ययन से मालूम होता है कि आचार्यवर्य भाषा, व्याकरण, प्रतिभा आदि के विषय में अच्छे ज्ञाता थे तथा तमिल भाषा के ओजस्वी विद्वान थे। इनकी विवेचन शैली अत्यन्त मनोहर हृदयग्राही एवं सर्व जनानन्ददायिनी है। इस ग्रन्थ को जैन-जैनेतर सारे के सारे बड़े चाव से पढ़ते हैं और इसकी खूब प्रशंसा करते हैं। सभी विद्वान

अपने प्रवचन में या भाषण में इसके पद्य को अवश्य उपयोग करते हैं। नहीं तो उसमें रोचकता नहीं आती। अत: यह ग्रन्थ तामिलनाडु भर में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसी कारण से इसके कई संस्करण निकल चुके हैं और हजारों की संख्या में बिक चुके हैं। विद्यार्थियों के पाठ्य पुस्तक में भी इसके पद्य रखे जाते हैं। इन सभी कारणों से इसका महत्व जाना जा सकता है। इसमें कोई शक नहीं है।

मैंने इस ग्रन्थ के महत्व को जानकर यही सोचा कि यदि इसका अनुवाद हिन्दी में हो जाय तो हिन्दी के लोग भी इससे फायदा उठायेंगे। इसी उद्देश्य से इसका अनुवाद हुआ है। इन सारे विषयों को परिचय कराना ही मेरा उद्देश्य था। इसमें मैं कहां तक सफल हुआ हूं, इसके निर्णायक पाठक गण ही हैं।

विद्याभूषण पं. मल्लिनाथ शास्त्री

मद्रास

नव देवता स्तवन

दोहा

परमेष्ठी पाँचों नमूँ, जिनवाणी उरलाय ।
जिन मारग को धारकर, चैत्य चैत्यालय ध्याय ।।

(तर्ज — अहो जगत् गुरु देव सुनियो .....)

अरिहन्त प्रभु का नाम, है जग में सुखदाई ।
घाति चतु क्षयकार, केवल ज्योति पाई ।।
वीतराग सर्वज्ञ, हित उपदेशी कहाये ।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित भक्ति सुध्यावे ।।१।।

सिद्ध प्रभु गुणखान, सिद्धि के हो प्रदाता ।
कर्म आठ सब काट, करते मुक्ति वासा ।।
शुद्ध बुद्ध अविकार, शिव सुखकारी नाथा ।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित नावे माथा ।।२।।

आचारज गुणकार, पञ्चाचार को पाले ।
शिक्षा दीक्षा प्रधान, भविजन के दुख टाले ।।
अनुग्रह निग्रह काज, मुक्ति मारग चलते ।
ऋद्धि सिद्धि सब पाय, जो आचारज भजते ।।३।।

ज्ञान ध्यान लवलीन, जिनवाणी रस पीते ।
अध्ययन शिक्षा प्रदान, संघ में जो नित करते ।।
रत्नत्रय गुणधाम, उपदेशामृत देते ।
ऋद्धि सिद्धि सब पाय, जो नित उवज्झाय भजते ।।४।।

दर्शन ज्ञान चारित्र, मुकती मार्ग कहाये।
तिनप्रति साधन रूप, साधु दिगम्बर भाये॥
विषयाशा को त्याग, निज आतम चित पागे।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो नित साधु ध्यावे॥५॥

तत्त्व द्रव्य गुण सार, वीतराग मुख निकसी।
गणधर ने गुणधार, जिनमाला इक गूँथी॥
'स्याद्वाद' चिन्ह सार, वस्तु अनेकान्त गाई।
ऋद्धि-सिद्धि सब पाय, जो जिनवाणी ध्याई॥६॥

सम्यक् श्रद्धा सार, देव शास्त्र गुरु भाई।
सम्यक् तत्त्व विचार, सम्यक् ज्ञान कहाई॥
सम्यक होय आचार, सम्यक् चारित गाई।
ऋद्धि सिद्धि सब पाय, जो जिन मारग धाई॥७॥

वीतराग जिनबिम्ब, मूरत हो सुखदाई।
दर्पण सम निजबिम्ब, दिखता जिसमें भाई॥
कर्म कलंक नशाय, जो नित दर्शन पाते।
ऋद्धि सिद्धि सब पाय, जो नित चैत्य को ध्याते॥८॥

वीतराग जिनबिम्ब, कृत्रिमाकृत्रिम जितने।
शोभत हैं जिस देश, हैं चैत्यालय उतने।
उन सबकी जो सार, भक्ती महिमा गावे।
ऋद्धि सिद्धि सब पाय, जो चैत्यालय ध्यावे॥९॥

दोहा

नव देवता को नित भजे, कर्म कलंक नशाय।
भव सागर से पार हो, शिव सुख में रम जाय॥

नोट–प्रतिदिन प्रातः पाठ करने से जीवन सुख, शान्ति और समृद्धि को प्राप्त होता है।

●

श्री जिनाय नमः

आचार्य श्री मुनैप्पाडियार रचित तमील भाषीय ग्रन्थ [धर्ममार्गसार] [अरनेरिच्चारं]

(१)
मंगलाचरण

ताविन्ट्रि एप्पोरुलुम् कण्डुणर्न्दु तामरैय्
पूविन्मेर, चेन्रान् पुकलडियै-नाविन्
तुतित्तीण् डरनेरिच् चारत्तै तोन्र
विरिप्पन् सुरुक्काय विरैन्दु

भावार्थ–अष्टादश दोषों से रहित होकर दुनियां के सभी चराचर पदार्थों को अपने दिव्य ज्ञान के द्वारा जाननेवाले तथा देवगणों से निर्माण किए हुए स्वर्ण कमलों के ऊपर चलने वाले जो भगवान अर्हत्परमेश्वर हैं, उनके पवित्र चरणों को भक्ति-भाव से नमन करके यहां पर धर्म मार्ग के सार भूत इस 'अरनेरिच्चारं' ग्रन्थ को मैं (आचार्य) विस्तार से कहने वाला हूँ।

[२]
धर्म का महत्व
पायिरम् (स्त्रोत)

मरवुरैयुम् कामतुरैयुं मयड्किप्
पिरवुरैयम् मलकियज्ञालत्-तरवुरै

केट्कुं तिरुवुडैयारे पिरवियं
नीक्कुं तिरुवुडैयार

भावार्थ :–पाप कर्मों को बढाने वाले, काम वासना को उत्पन्न करने वाले, भोग लालसा आदि दुर्भावों को जगाने वाले जो मिथ्या शास्त्र हैं, उनसे परिपूर्ण इस संसार में सद्धर्म की महिमा को बतलाने वाले शास्त्रों को सुनने की अभिलाषा रखना परमावश्यक है। ऐसे उत्तम शास्त्र के जिज्ञासु जो भव्य पुरुष हैं वे ही चतुर्गति भ्रमण को नाश करके मोक्ष गति को प्राप्त करने योग्य हो सकते हैं।

[३]

धर्मोपदेश की आवश्यक चार बातें

उरैप्पवन् केट्पान उरैक्कप्पडुवदु
उरैत्तातनालाय पंयनुं-पुरेप्पिन्ट्रि
नान्मैयुं पोलियै नीक्कि अवैनाट्टल
वान्मैयिन् मिक्कार वलक्कु

भावार्थ–धर्मोपदेश में चार बातों को समझने की आवश्यक्ता है-(१) धर्मोपदेश देने वाले आचार्य (२) उनसे कहने योग्य धर्म (३) उस धर्म को सुनने वाला व्यक्ति (४) उक्त धर्म से होने वाला फल। इन चारों को अच्छी तरह विचार करना चाहिये। क्योंकि इसी में सच और झूंठ का तत्व भरा हुआ

है। इस तरह खूब विचार करने के बाद उन में जो दोष होगा उसे सभी प्रकार से हटाकर सच्चे धर्मों को समझना या अंगीकार करना उत्तम पुरुष याने सम्यग्दृष्टियों का कर्त्तव्य हैं

[४]

धर्मोपदेशक का स्वरूप

अरंकेट्टरुलपुरिन्दैंपुलन्गलमाट्टुं
इरंगादिरुसार पोरलूं-तुरन्दउडि
मन्नुयिक् कुंयन्दुपों वायिलुरैप्पानेर
पन्नुदकुप् पार्प्पट्टवन्

भावार्थ :–सद्धर्मोपदेश देनेवाला व्यक्ति कैसा हो :– सच्चे धर्म के सभी विषयों को जानने वाला हो, परम कृपालु हो, पँचेन्द्रियों की लालसा से सदा दूर रहने वाला हो, स्व-पर वासना से विमुक्त हो, अत्यन्त विनयी हो, ऐसे उदार हृदय वाला व्यक्ति ही संसार के भव्य प्राणियों को सद्धर्म का स्वरूप वताकर संसार बन्धन से मुक्त होने एव मोक्ष प्राप्ति करने का सदुपदेश दे सकता है।

[५]

धर्मोपदेश देने के अपात्र लोग

पिललै पेय् पित्तान् पिणियालन् पिन्नोक्कि
वेल्लै कलिविडमन् वेटकैयान्-तेल्लिप्
पुरैक्कप्पोरुलुणर्वा नेन्ट्रिवरे नूलै
उरैत्तकुंरिमैयिलादार्

भावार्थ :–छोटा बालक, पिशाच से पीड़ित व्यक्ति, पागल आदमी, रोगी, संकुचित चित्तवाला व्यक्ति, मूर्ख, शराबी, दूसरों को बिना कारण दुःख देने वाला, लालची. दोष मात्र ग्राही ये सब के सब धर्मोपदेश देने के पात्र नहीं है। अर्थात् इन लोगों को धर्मोपदेश देना व्यर्थ है।

[६]

धर्म श्रवण करने योग्य व्यक्ति

तडुमाट्र मंजुवान् तन्नैयुवर्प्पान्
वडुमाट्र मंजित्तं र् काप्पान्-पडुमाट्राल्
ओप्पुरवु सेय्दाण्डुरु तिच्चोल् सेर्पवन्
तक्कान् तरुम उटैक्कु

भावार्थ :–अपने कर्त्तव्य मार्ग से च्युत होने में डरने-वाला, आत्म प्रशंसा में अप्रीतिवाला, स्वात्म दोष से बचने वाला शक्त्यनुसार दूसरों को सहायता करने वाला, बड़ों की आज्ञा पर चलने वाला व्यक्ति ही धर्म श्रवण करने लायक है।

[७]

धर्म श्रवण करने अयोग्य व्यक्ति

तन्सोलले मेर्पडुण्नान् तण्डि तडिपिणक्कन्
पुन्सोल्ले पोदरवु पात्रिरुप्पान्-इन्सोललें
एन्ट्रिरुन्दुं केलाद एलै एन इवर, कदकु
आट्रवरगल् कूराररम

भावार्थ :–अपनी बात को श्रेष्ठ मानने वाला, अहंकारी, मतभेद रखने वाला, दूसरों की निन्दनीय बातों पर ध्यान देनेवाला, आत्म संतोष देने वाली बातें होने पर भी उन्हें न सुनने वाला, मूर्ख, इस तरह के लोगों को इन दुर्गुणों में एक भी हो या सभी) समझदार विद्वज्जन धर्मोपदेश नहीं देते। अर्थात् इन लोगों को धर्मोपदेश देने से समय ओर शक्ति के व्यय होने के सिवाय कोई भी लाभ नहीं हो सकता।

[८]

सद्धर्म का लक्षण

विनैयुयिर, कटटुवीडिन्न विलक्किट्
तिनैयनैत्तु तीमै यिन्ट्रागि-निनैयु गाल
पुल्लरत्तैत तेयत्तुलगिनोडु पोरुन्द्रवदाम्
नल्लरत्तै नाडु मिडत्तु

भावार्थ :–यदि सोच-विचार कर सद्धर्म को स्वीकार करें तो वह सद्धर्म (सम्यग्दर्शन), आत्मा, कर्म बन्ध और मोक्ष का स्वरूप अच्छी तरह बतला देता है। साथ ही साथ सभी तरह के दोष एवं कुकृत्यों (पापों) से छुड़ा कर महात्माओं के साथ मिला देता है। अर्थात् वह आत्मा कर्म स्वरूप को जानकर दुष्कृत्यों से बच जाता है और खुद महात्मा बन जाता है।

[९]

कुधर्म का लक्षण

आवटै पोन्ट्रियादारै मयक्कुरुत्तिप,
पाविट्टार्केल्लां पडुकुलियायक्-काविटटु

इरुमैक्कुं एग्मं पयवादनवे
दरुमत्तु प्पोलिगल् ताम्

भावार्थ :-जो धर्म, जौक के समान (जो कीड़ा गाय के स्तन पर रहने पर भी दूध को छोड़कर खून को पीता है) अन-जान लोगों को ठगकर दु:ख दे डालता है। और उन दु:खी लोगों को (कोई सहायक न होने के कारण) अनाथ बना कर इह परभव के लिये दु:ख देने का कारण बन जाता है। वह कुधर्म, धर्म के समान दिखने पर भी धर्म नहीं है, मिथ्या धर्म है। इस तरह के कुग्रन्थ भी धर्म ग्रन्थ नहीं है बल्कि अधर्म ग्रन्थ है।

[१०]

सद्धर्मोपदेश का फल

पुल्ल वुरैत्तल पुगलदल पोरुलीदल्
नल्लखिरेन्ट नटपाडल-सोल्लिन्
अरङ्केल्वियालां पयनेन्ट्र रेप्पर
मरङ्केलिव माट्रियवर्

भावार्थ :-सद्धर्मोपदेश देने वाले महात्माओं की देशना सुनने के लिए (लोग) स्वयं आना, उनकी प्रशंसा करना, उन महात्मा के लिए सभी तरह की सहायता देना और उन्हें सज्जन समझ कर उन्हीं के साथ संबंध रखना यही सुखदायक है। इस तरह की मनीषाएँ लगातार मिलते रहना, ये सब हित-मित एवं सच्चे धर्मोपदेश से होने वाला फल है।

[११]

सद्धर्मोपदेश से होने वाला फल

काट्चियोंलुककोड़, ज्ञानं तलैनिन्ट्
माट्च मनैवालद लन्ट्रियु-मीटिचायील्
वीट्टुलगमेय्दल् एन विरण्डे नल्लरङ्
केट्टदनालाय पयन्

भावार्थ :–सच्चे धर्म को सुनने से मनुष्य वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को जानने योग्य सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्च्चारित्र को पा लेता है। उससे सद्गृहस्थ बनकर गृहस्थाश्रम को विशुद्धरूप से चलाता है। अन्त में संपूर्ण कर्मों को विनाश कर अविनश्वर मोक्ष गति को प्राप्त करने का पात्र बन जाता है। अर्थात् सद् गृहस्थ बनना और निरन्तर (मोक्ष) सुख की प्राप्ति करना ये दोनों सद्धर्म श्रवण करने से होने वाले सुफल है।

[१२]

धर्म दश प्रकार के हैं

मेयमै पोरैयुडैमैमेन्मै तवमडक्कं
सेम्मैयोन् ट्रिन्मै तुरवुडैमैनन्मै
तिरंभा विरतं तरित्तलो डिन्न
अरं पत्तुं आन्ट्रं गुणम्

भावार्थ :–उत्तम क्षमा, उत्तम मादर्व, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग

उत्तम आकिञ्चन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य इस तरह धर्म दश प्रकार के हैं।

[१३]

धर्म ही सबसे श्रेष्ठ है

तनक्कुत् तुणैयागित् तन्नै विलक्कि
नत्तुल् इरैमैयुञ्ञ् सेय्तु-मनक्किनिय
भोगं तरुदलाल् पौन्ने ! अरत्तुणैयोडु
एगमा नण् बोन्ट्रु मिल्

भावार्थ :-हे धर्म देवता ! तुम लक्ष्मी के समान हो। जैसे लक्ष्मी मनुष्य के साथ सबंध रख कर उसकी सहायता करती है। उस आदमी की सबसे जानकारी कराती है। मानव समुदाय में उसको यजमानत्व की पदवी दिलाती है। उस मनुष्य की इच्छा के अनुसार भोग सामग्रियों को भी प्रदान करती है। वैसे ही धर्म देवता के संबंध से सब तरह की सहायता मिलना, सब से जानकारी होना, यजमानत्व प्राप्त करना, भोग सामग्री मिलना आदि वैभव की प्राप्ति के साथ-साथ अनन्त सुख याने अविनाशी सुख की प्राप्ति भी मिल जाती है।

[१४]

धर्म ही परभव का एक मात्र सहायक हो सकता है

ईट्टियं कोण् पोरुलुं इल्लोलियुं सुट्रत्तार्
काट्टुवाय् नेरे कलुन्दोलिवर्-मूट्टुं

एरियिन् उडंबोलियुं ईङ्गुन्ट्र नाड !
तेरियिन् अरमे तुणै

भावार्थ :-हे शील नामक पर्वत के अधिराज, बड़ी मुश्किल से कमाई हुई सारी सम्पत्तियां घर पर ही रह जायेगी। बन्धु बान्धवजन तो रोते हुए श्मशान तक आकर छोड़ जायेंगे। अपना शरीर जलती हुई अग्नि के अन्दर जलकर भस्मसात् हो जायेगा। हम यदि इस तरह दुनियां के वास्तविक स्वरूप को सोच-विचार कर देखते हैं तो हमें अच्छी तरह मालूम पड़ता है कि मनुष्य के लिए धर्म ही एकमात्र सहायक है, न कोई दूसरा।

[१५]

त्यागी और गृहस्थ आपस में आदर भाव दिखावें

नोर्पवरिललवक्कुंच् चारवागि इल्लवरुं
नोर्पवक्कुंच् चार्वा यरंपेरुक्कि-याप्पुडैक
कालुं किडुगुंपोल् निर्कुंङ कमक्किन्ट्रि
आलिसूल वैयत्तरम्

भावार्थ :-गृहस्थ लोग त्यागियों के प्रति सभी तरह का आदर भाव दिखावें, जिससे आपस में सहानुभूति बढ़ कर गृहस्थाश्रम तथा यत्याश्रम धर्म वृद्धिगत होवें। पारावार से घिरे हुए इस संसार में ये दोनों धर्म किसी भी कारण से बाधित न हो कर खंभा और दीवाल के समान आपस में आदर भाव के साथ खड़े हो कर जीते रहें।

[१६]

छोटी अवस्था में भी धर्म करे

इनसोलिवलै निलमा इदले बित्ताग
वन्सोर्क्कलैकट्टू वायुमै एरुवट्टिट
अन्बुनीर् पाय्च्चि अरक्कदिर् ईन्ट्रदोर्
पैङ्कूल सिरु कालैच्चेय्

भावार्थ :–प्रिय वार्तारूपी जो जमीन है, उस पर त्याग-रूपी खाद को डालें, जिस पर प्रेमरूपी पानी को सिंचाकर धर्मरूपी धान को प्राप्त करने की कोशिश करें। इस पवित्र कार्य को छोटी अवस्था में भी करने का प्रयत्न करें। याने कुछ लोगों का कहना यह है कि धर्म करने के लिए वृद्धावस्था ही उचित है, ऐसा सोच कर बैठे रहना है, परन्तु मनुष्य की मृत्यु कब होती है इसका पता लगाना मुश्किल है। अतः मनुष्य को चाहिए कि समय या अवस्था की प्रतीक्षा न करके हर समय धर्म कार्य करने के लिए तैयार रहें।

[१७]

छोटेपन में धर्म करना अत्यावश्यक है

कालैच्चेय् वोमेन्ट्ररत्तैक्कडैप्पिडित्तुच्
सालच्चेय्वारे तलैप्पडुवार्-मालैक्
किडन्दान् एलुदल् अरिदाल् मट्रेन्कोल्
अरङ्कालै सेय्यादवारु

भावार्थ :–छोटी अवस्था में प्रतिज्ञा धारण कर धर्म करने वाले ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। क्योंकि रात में सोया हुआ व्यक्ति सुबह जरूर उठेगा, यह निश्चय से नहीं कहा जा सकता। ऐसे अनित्यमय इस संसार के अन्दर छोटी अवस्था में धर्म न करें तो फिर क्या होगा ? कहना मुश्किल है। अच्छे मौके पर चूक जाना बुद्धिमत्ता कैसे मानी जायेगी ? याने मौके को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिये।

[१८]

छोटेपन में धर्म न करने से नुकसान

सेन्रनालेल्लां सिरुविरल्वैत्तेण्णलाँ
निन्ट्रनाल् याक्कुं उणर्वरिदु-एन्ट्रोरुवन्
नन्मैपुरियादु नालुलप्प विट्टिरिक्कुं
पुन्मै पेरिदु पुरम्

भावार्थ :–अपनी आयुष्य में बीते हुए दिनों को ऊँगलियों से गिन सकते हैं। मगर कितने दिन बाकी हैं, इसे जानना मुश्किल है। कोई व्यक्ति इस बात को अच्छी तरह जानते हुए भी पुण्य कार्य नहीं करता है और अपने जीवन को व्यर्थ ही खो डालता है तो उसे पीछे पछताने के साथ-साथ बड़े दुःख का भी सामना करना पड़ता है।

[१९]

यमराज का माध्यस्थ्यभाव

कोट्टुनालिट्टु कुक्करैयुणन्दु वारादाल्
मीट्टोरुजालडैयुन् तारादाल्-वीट्टतर्कै
वञ्जञ्चेय् कूट्र वरुतलाल् नन्ट्रट्रि
अञ्जाद मैन्दिरुक्कर्प्पाट्र्।

भावार्थ :–यमराज निश्चित दिन के पहले कभी नहीं आता। यदि उससे एक दिन का समय ज्यादा माँगे तो वह उसे कभी भी नहीं देता। अपने आने का समय पहले ही से न बता कर वंचना करने वाला यमराज, अकस्मात् आकर जीवन को छीन ले जाता है। अतः उन के आने के पहले से ही परभव के लिये खूब धर्म्म कर आवश्यक पुण्य कमा लें और मरण के लिए बिना डर के तैयार रहें।

[२०]

शरीर और धन की अनित्यता

इन्ट्रुलार् इन्ट्रेयुं माय्वर् अवरुडैमै
अन्ट्रे पिररुडैमै यायिकुंरुक-निन्ट्र
करुमत्तारल्लात कूट्रिन्कील वालवार्
दरुगन् तलैनिट्रल् नन्ट्र,

भावार्थ :–आज जिन्दा रहने वाला मनुष्य आज ही मर सकता है। उस की सारी संपत्तियां उसी समय दूसरों की हो सकती हैं। अतः यमराज के (कर्म्म) अधीन होकर रहने वाले जीव को चाहिये कि सुख-भोगादि के ऊपर मोह एवं ममता को छोड़कर अपने निश्चित और आत्मीय धर्म्म मार्ग पर आरूढ हो जाना परमावश्यक है।

[२१]

यौवनावस्था की अनित्या

मिन्नु मिलमै उलदां एनमनिल्न्दु
पिन्नै यरिवेनेन्ट्रल् पेदैमें-तन्नैत्
तुणित्तानुं तूंगा दरं सेय्ग कूट्रम्
अणित्ताय् वरुदलुमुण्ड,

भावार्थ :–यौवनावस्था बिजली के समान रहने वाली है। (जैसे बिजली एक समय चकाचौंध दीखती है। दूसरे समय उसका पता भी नहीं चलता) इस बात को अच्छी तरह जानते हुए भी धर्म करने के लिए विलम्ब करना (अब तो जवानी है, भोग-भोगने का समय है। वृद्धावस्था तो धर्म करने का समय है।) नितांत मूर्खता है। क्योंकि यमराज जवानी में भी मानव के शरीर को छीन कर ले जाने के लिए आ सकता है। इसलिये हर आदमी को चाहिए कि अपने शरीर को कष्ट दे करके भी बिना सोये याने जागरूकता के साथ धर्म कार्य में तत्पर हो जाना जरूरी है।

[२२]

धर्म ही एक मात्र सहायक है

मूप्पोडुतीप्पिणि मुन्नुरीइप् पिन्वन्दु
कूट्वरसन् कुरुंबेरियु-आट्र
अरवरण माराय् न्दडैयिन दल्लाल्
पिरवरण मिलले युयिक्कुं

भावार्थ :–यमराज़ पहले बूढ़ापन एवं भयंकर बीमारी को दूतवत् भेज देता है। पीछे खुद आकर शरीर को छीन कर ले जाता है। हम इस बात को अच्छी तरह मनन कर ध्यान में लाते हैं तो हमें पता लगता है कि मनुष्य का धर्म के सिवाय कोई दूसरा रक्षक नहीं है। अतः हे भव्य बन्धुओं! उस धर्म के शरण में जाने के लिए तैयार हो जाईये।

[२३]

सद्धर्म को ही सभी प्रकार से करना है

तिरुत्ताप्पडुव दरक्करुमं तम्मै
वरुत्तियु माण्पुडैयार् सेय्ग-पेरुक्क
वरवुं पेरुंकूट्रं वन्कण् ञमन्कील्त्
तरवरुत्तु मीलामै कण्डु

भावार्थ :–भले प्रकार से करने योग्य काम कुछ है तो वह सद्धर्म ही है। क्योंकि भयानक यमराज प्राणियों के जीवन को अपहरण करने के लिये कई बार आता है। (एक बार वह अपने कार्य में विफल हो जाता है तो दूसरी बार आता है। फिर तीसरी बार; इस तरह उसका काम तमाम होने तक आता ही रहता है।) वस्तुतः उस काल के अधीन हुए जीव उसकी आज्ञा का उल्लंघन कर वापस होते नहीं दीखते हैं। अतः परिज्ञानी लोग (सम्यग्दृष्टि) अपने को कष्ट दे करके भी सद्धर्म को अपनाते हैं।

[२४]

जल्दी से जल्दी धर्म करें, देर मत करें :-

मुन्नै ओरुवन् मुडित्तान् ट्रन् तुप्पेलां
एन्ने ओरुवन् इकलंतिरुत्ताल-मुन्ने
मुडित्ता पडि यरिन्दु मुन्मुन् अरत्तैप्
पिडिक्क पेरिदाय विरैन्दु

भावार्थ–अपने से पहले कई आदमियों ने वासना की वस्तुवों को भोग कर छोड़ गये हैं। उन से भोगी हुई जूठन पर ही हम लपक कर चाटते हुए बैठे हैं। हर कोई आदमी अपनी महती सम्पत्तियों को एक न एक दिन छोड़ कर ही जाता है। इसे आँखों से देखकर भी धर्म न कर सुस्त बैठे हुए आदमी की दशा पर उपहास करना पड़ता है। अतः बुद्धिमानों का कर्तव्य यही होना चाहिये कि बुजुर्गों के मार्ग का अनुगामी बन कर झटपट धर्म करने का प्रयत्न करें।

[२५]

धर्म के अभाव से आनेवाली आपत्ति

कुरैक्करुमं विरैट्टुप्पिर् कोल्ल उलवा
अरक्करुमं आरायन्दु सेय्क-पिरप्पिडैक्कोर्
नेञ्चे माप्पिल्लतान् वाल्कै निरयत्तुत्
तुञ्जात्तुयरं तरुम्

भावार्थ—मनुष्य को पुण्य-पाप संचय करने का एक मात्र

साधन मन ही है। यदि वह धर्म मार्ग पर लगेगा तो वह पुण्य संचय कर लेता है। अधर्म पर लगेगा तो पाप। अतः पुनर्जन्म की रक्षा के वास्ते मन को धर्म मार्ग पर लगाकर कुछ पुण्य अवश्य संचय कर लेना जरूरी है। इसलिए हे मनुष्य, अच्छी तरह सोच-विचार कर धर्म-पथ पर आरूढ़ हो जाओ। क्योंकि कर्मों की लीला अपरंपार है उसकी विवेचना करना वचनातीत है।

[२६]

शरीर की अनित्यता :-

अरंपुरिन्दाट्टु व सेय्यादु नालुम
उरंगुदल् कारणं मेन्नै ? मरन्दोरुवन्
नाट्टु विडक्कूर्दि अच्चिरं कालत्ताल्
कूट्टुत्तिर मिन्मैयाल्

भावार्थ--कर्मरूपी ब्रह्मा से बनाया हुआ यह मांसमय वाहन यानि शरीर, यदि टूट जायगा तो उसे मिलाकर फिर से ठीक करना सर्वथा असम्भव है। अर्थात् लकड़ी वगैरह से बनाया हुआ साधारण वाहन यदि टूट जायगा तो फिर से ठीक हो सकता है। परन्तु शरीर टूट जायगा। (जीव से मुक्त होकर खाली रह जायगा) तो फिर कभी भी बनता नहीं, यानि गया सो गया। ऐसे दुखःमय अपने शरीर की परिस्थिति को देखकर भी मनुष्य, सर्व रक्षक एवं महान् धर्म को न अपना कर मद में भूला हुआ सोता रहता है तो इसका कारण क्या है ? अविवेक ही है।

[२७]

धर्मविहीन जीवन निरर्थक है।

पावं पेरुगप्पलिपेरुकत् तन्नोंबि
आवदोंट्रिल्लै यरणलित्तुप्-पावं
पोराअ मुरैसेय् पोरुविल् जमन्कील
अरावुण्णूं आट्रवुनिन्ट्रु

भावार्थ—यमराज नीतिमान कहलाता है। वह किसी पर दया न दिखाकर अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहता है। अपने जो पाप कर्म है उस पर क्षमा नहीं दिखाला सकता। उसका काम यही रहता है कि अप्रत्यक्ष में ही अपने आयुष्य को हजम करते रहना जब अपना आयुष्य खत्म हो जाता है तब अपने को यहां से कूच करना ही पड़ेगा। ऐसी अवस्था में धर्म का विनाश, पाप की वृद्धि और बदनाम आदि दुर्व्यवहार के साथ जीवन बिताना क्या लाभदायक हो सकता है? कभी नहीं। अपने को तो यही करना चाहिये कि यमराज के फंदे में फसने के पहले अच्छे से अच्छे काम करके परभव के वास्ते खूब पुण्य कमालें जिससे यमराज से डरने की आवश्यकता ही न पड़े यही बुद्धिमत्ता का कार्य है।

[२८]

धर्म को भूलना नहीं है :—

मुचैंय् विनेयिन् पयन्ट्रुय्त्त त्तुवुलन्दाल
पिरुचेय् विनैयिन्पिन् पोगलाल—नर्चेय्गै

आट्रं तुणैयुं अरमरवेल् नन्नेञ्जे !
कूट्रङ् कुडिल्पिरियामुन्

भावार्थ--हे भले मन, जरा सोचो, इस भव में रहने वाला प्रत्येक जीव अपने शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार फल भोगता है जब वह कर्म नष्ट हो जाता है तो इस भव में संचित किये हुए कर्म्म के अनुसार दूसरी गति में जाकर फल भोगना पड़ता है। अतः यमराज (कर्म्म) अपनी आत्मा को शरीर से अलग कर, ले जाने के पहले जीवन पर्यन्त धर्म्म कार्य में दत्त-चित्त रहना बहुत जरुरी है। कभी भूलकर भी अपने समय को व्यर्थ नहीं खोना चाहिये।

[२९]
प्राप्त धन से धर्म्म करे

तिरैयवितु नीराड लाका उरैप्पार
उरैयवित्तोन्ट्रुञ्सोलइल्लै-अरैसरायच्
सैयदुं अरमोनिनुं आगादुलवैरयाल्
सेयवदर्के आकुन्तिरु

भावार्थ--रे मन, 'पारावार में लहरें बन्द हो जाने पर स्नान करना सर्वथा असंभव है।' नीतिज्ञ इस नीति को हमेशा बतलाते हैं। इसके सिवाय और कोई नीति उपयुक्त नहीं हो सकती। कोई आदमी यह सोचें कि जब हम राजा-महाराजा बन जायेंगे, तब हमारे पास भरपूर धन राशि होगी। उस समय हम दिल खोलकर दान-धर्म्म करेंगे। इस तरह का विचार कभी

फलित नहीं हो सकता। पहली बात तो यह हैं कि हर आदमी को राजा-महाराजा बनना असंभव है। शायद राजा-महाराजा हो भी जाय उस समय उसका दिल किस ओर जायगा और उसका धन, धर्म कार्य में ही लगेगा यह कैसे कहा जा सकता है ? अतः हमें यही करना चाहिये कि जितना धन मिला है उतने से ही तृप्त होवें तथा उस धन को दान-धर्म में लगाना और पुण्य कमाना ही श्रेयस्कर है।

[३०]

मूर्ख को धर्मोपदेश–देने से कोई फायदा नहीं है

कल्ला ओरुवनै क्कारणं काट्टिनुं
इल्लैमट्रोन्ट्रू अरनुणदंल्–नल्लाय्
नरु नेय् निरैय–मुगप्पिनु मूलै
पेरुमो सुवैगुणरु मारु

भावार्थ :––हे सद्गुण व्यक्ति, चम्मच, बढिये से बढ़िया घी से पकाये गये स्वादिष्ट वस्तु के अन्दर पूरो तरह से घुसा हुआ होने पर भी वह उसके स्वादु को पहचान नहीं सकता। वैसे ही जो मूर्ख आदमी है उसे कारण–कार्य आदि बतलाकर जितना भी समझावें तो भी वह धर्म स्वरूप को कदापि समझ नहीं सकता और धर्म मार्ग को अवलंबन करने में भी तत्पर नहीं हो सकता।

[३१]

नीच व्यक्ति को धर्मोपदेश नहीं रूचेगा

वेंकलुं नीरुट् किडप्पिनुं कलिलकुं
मेल्लेंट्रल साल अरिदागुं-ग्रहरेपोल्
वेंकलुं नल्लरं केट्पिनुं कोलकट्कुक्
कल्लिनुं वल्लेन्नु नेञ्जु

भावार्थ–पत्थर को दिनभर पानी में डुबोकर रखने परभी वह अपने कठिनत्व को छोड़कर मृदुपने में परिणत नहीं हो सकता वैसे ही प्रतिदिन नीच व्यक्ति के कानों पर धर्मोपदेश को भरते रहने पर भी उसका दिल पत्थर के समान कठिन ही रहेगा। बल्कि धर्म ग्रहण करने लायक नहीं बनेगा।

[३२]

अपात्र को धर्मोपदेश से कोई लाभ नहीं है

कयत्तिडै उय्त्तिडिनुं कन्ननैयायादेन्ट्रु
पयट्रुक्करिवेवा दट्राल्-इयट्रि
अरवुरै केट्टविडत्तुं अनैयार्
तिरवुरै तेरादवर

पत्थर को तालाब में डालकर डुबोने से नरम नहीं होता और एक तरह का मूंग(ठर्रा-मूग)को दिनभर पकाने पर भी

नहीं पकता वैसे ही धर्मोपदेश को विधि-विधान के अनुसार समझाने पर भी अपात्र व्यक्ति उसे न समझ सकेगा और न सुनेगा। उसके वास्ते किया गया सारा परिश्रम और समय व्यर्थ ही होगा।

[३३]

मन का दुष्कृत्य

अट्पोलुदे अरनिनैंत्ति यादोन्ट्
पेट्ट पोलुदे पिरनिनैंत्ति–एट्टे
निलैमैयिल् नन्नेंजे ! निन्नोडु बालक्कै
पुलैमयंकि यन्न तुडैत्त्

भावार्थ :—रे मन, जिस समय धन नहीं मिला है तो उस समय सोच बैठता है कि यदि धन मिला होता तो धर्म-दान करते। शायद धन-सम्पत्ति मिल जाती है तो धर्म को भूलकर पाप कार्य करने में लग जाते हो। निश्चित भाव से रहित रे भले मन, तेरे साथ रहकर जीवन बिताना नीच लोगों के साथ रहने के बराबर है।

[३४]

शरीर का विनाश

ओरु पाल् तिरुत्त ओरुपाल् किलियुं
पेरुवालक्के मुत्ताडै कोण्ड–तिरुवाला
वीणाल् पडामैनी तुन्नं पोय् येयाग
वाणाल् पडुव दरि

भावार्थ :—एक तरफ फटा हुआ शरीर रूपी जो कपड़ा है उसे सीने लगे तो वह दूसरी ओर फटने लगता है। यदि उसे भी सीने लगे तो तीसरी ओर फटता है। इस तरह हर समय फटने योग्य हर समय व्याधि आदि के कारण नाश होने योग्य इस शरीर रूपी कपड़े को धारण करने वाले हे प्रभु (निन्दा) बार-बार इसे सीने से कोई फायदा नहीं है। तुम (मन) तो इस बेकार काम पर लगे हुए हो। तुम्हारा जीवन (आयुष्य) उधर हजम होता जा रहा है। इसलिये तुम्हें यहीं करना चाहिए कि वह सर्वथा नष्ट होने के पहले अच्छी तरह समझ लो और अपने जीवन को सुधारने का प्रयत्न करो।

[३५]

धर्म न करने से होने वाली हानि

उल्लनाल् नल्लरं सेय्गेन्नु साट्रुन्ट्रो
इल्लोनाट् पेऱ्ऱोन् ट्रिडंकडिन्दु-तोलले
इडैक्कडैयु माट्टार् इरन्दाक्कु निन्ट्रार्
कडैत्तलैवैत्तीयु बलि

भावार्थ :—बड़ी भारी धन-सम्पति के साथ रहने वाला व्यक्ति अपनी संपत्ति के मद से अन्धा होकर धर्म पर ध्यान नहीं देता है। बल्कि सारी संपत्ति को भोग विलास में लगाकर मस्त रहता है। फिर वह दरिद्रनारायण की पदवी पाकर पिशाचवत् मारे-मारे भीख मांगता फिरता है, तब उसकी इस दयनीय दशा को देखकर कोई इसे खाना खिलाता है तो उस समय वह भोजन मानो इस दरिद्र से कहता है कि रे मूर्ख, संपत्ति के

समय में तुमने धर्म क्यों नहीं किया ? इसी कारण से तुम्हारी हालत हुई है। जो जरूर करना चाहिये था उसे तुमने नहीं किया। जो जैसा करता है, वो वैसा पाता है और भोगता है।

[३६]

पेट का उपद्रव

ओरु नालुं नीदरियाय् उण्णेन्ट्रु सोलिल
इरु नालैक्कीन्दालुं एलाय्-तिरुवाला !
उन्नोडुरुदि पेरिदेनिनुं इन्नुडंबे !
निन्नोडु वालतलरिदु

भावार्थ :—भूख के कारण दुःख देने वाला हे पेट, तू बड़ा उपद्रवकारी है। एक दिन का खाना नहीं मिले तो चुप नहीं रहता। मिष्ठान्न वगैरह ज्यादा मिलते समय दो दिन का खाना लेने के लिये कहें तो लेता नहीं। अरे बाबा ! तेरे साथ रहने से फायदा होने पर भी, तेरा संग निभाना तो बड़ा ही कठिनसा प्रतीत होता है।

[३७]

धर्म के लिए यथार्थ ज्ञान की आवश्यकता

कट्टलै कोटित्तिरियि कैरुदिय
इट्टिकैयुं कोडु मदुपोलुं-ओट्टिय
काट्टिच तिरियि नरन्दिरियुं एन्ट्रुरैप्पर्
माट्टियिनू मिक्कवर् ताम्

भावार्थ :—ईंट को तैयार करने वाली लकड़ी यदि टेढ़ी रहेगी तो ईंट भी टेढ़ी होगी। उसी के समान दर्शन (सम्यग्दर्शन) विपरीत (मिथ्या) होगा तो धर्म भी विपरीत (मिथ्या) होगा। इसलिये आदमी को चाहिये कि धर्म को विपरीत अवस्था से यथार्थ रूप में परिणत करने का (दर्शन को बदलने का) प्रयत्न करें।

[३८]

धर्म ग्रन्थों से छह पदार्थ जानने का है

तलैमगनुं नलुं मुनियुं पोरुलुं
तोलैविन्ट्रुमिवोडु पक्कं–मलैविन्ट्रि
नाट्टियिव्वारुं उरैप्परे नन्नेरियैक्
काट्टियर मुरैप्पार्

भावार्थ :—सद्धर्म एवं सन्मार्ग को बतलाने वाले महान् वीतराग पुरुष, छः पदार्थों को जानने का उपदेश देते हैं। वे हैं :—(१) वीतराग 'परमेश्वर' (२) यथार्थ स्वरूप को बतलाने वाला या वीतरागी पुरुष से कहा गया 'शास्त्र'। (३) सच्चे एवं दयामय मार्ग पर चलने वाले 'साधुवर'। (४) सदा सर्वकाल में रहने वाले पदार्थ 'षड्द्रव्य' (५) उन द्रव्यों से होने वाली 'पर्याय' (६) वीतराग परमदेव और अन्य यथार्थ वस्तुओं पर 'श्रद्धान'। इन छे विषयों को पूर्वा पर विरोध के बिना वीतराग देव से प्रतिपादन किया गया है। इन को जानना परमावश्यक है।

[३९]

सच्चे धर्म पर श्रद्धान रखना परमावश्यक है

इरन्दुं पेरियनू लेम्मते रेय्नं
अरन्ट्रानुं इहरेसेन् ट्राट्रन् तुरन्दार्गल्
तम्बाल वार्डिग युरैत्त दनालां रागन्दु
नम्बग जल्ल अरम्

भावार्थः-जिस व्यक्ति ने भले प्रकार संसारकारी और भोग कीवाञ्छाको छोड़कर तप धारण करते हुए कषाय निग्रह के द्वारा बाहयाभ्यन्तर लालसा को त्याग किया है। ऐसे उत्तम पुरुष से बताये गये ग्रन्थ ही सच्चा ग्रन्थ माने जा सकते हैं। उन्हीं के द्वारा कहे गये 'परमेश्वर और धर्म' बिल्कुल सच्चे हैं। फिर भी ऊहापोह से विचार कर इस महान् धर्म को श्रद्धान के साथ स्वीकार करना उचित है।

[४०]

पूर्वापर अविरोध एवं करुणामय धर्म ही धर्म है

ओन्ट्रोडोन्ट्रोण्वादपासण्डन् तुल्लेललाम्
ओन्ट्रोडोन्ट्रोण्वाप्पोरुडेरिन्-तोन्ट्रोडोन्
ट्रोण्याउयिरोंवि उट्टूटमै पेट्रं दे
अव्वायदागुं अरम्

भावार्थ :-मतमतान्तर के शास्त्र पूर्वापर विरोधात्मक हैं। उनके अन्दर रहने वाले पूर्वापर विरोधात्मक तत्वों को

उसी प्रकार समझ कर, नाना प्रकार के जीवों की रक्षा के निमित्त स्व स्वरूप और दयामय जो शुद्धात्मक तत्व है उसी को ग्रहण करना है तथाप्रकारान्तरसे उसे धर्म भी कहते हैं।

[४१]

यथार्थ शास्त्रों को जानने का उपाय

निरत्तारत्तु च् चुट्टुरेत् तुप्पोन्केलवान् पोल
अरत्तिनुं आरांदुल् पुक्काल् पिरुप्पिरुक्कुं
मेयन्नूल् तलैप्पडलागुमट्रागादे
कण्णोडिक्कण्डने कण्डु

भावार्थ :-सोना खरीदने वाला व्यक्ति उस सोने को काटकर, खिसकर, जलाकर अच्छी तरह देख-भाल करने के बाद तोल-मोल कर लेता है। वैसे ही शास्त्र के बारे में भी सभी प्रकार से परीक्षा करना परमावश्यक है। तदन्तर ग्रहण करने वाला शास्त्र, संसार सागर पारावार को विच्छेद करने को समर्थ हो सकता है। बिना विचार के देखा-देखी से ग्रहण करने वाला शास्त्र, सच्चा शास्त्र नहीं बन सकता।

[४२]

स्वपक्ष-परपक्ष के बिना खोज करे

काय्दलुवत्ताल गट्रि ओरु पोरुट्कण्
आय्दलरिनुडैयार् कण्णदे-काय्वदन्कण्
उट्रुणन्तोन्ट्राद दागुं उवप्पदन्कण्
कुट्रुमुं तोन्ट्राक्केडुं

भावार्थ :-व्यक्ति जिस वस्तु पर विपक्ष भाव रखता है, वह उस वस्तु के गुण को ग्रहण नहीं करेगा। जिस वस्तु पर स्वपक्ष भाव (पक्षपात) रखता है उसे उस वस्तु के दोष का परिज्ञान नहीं होगा। अतः यथार्थ रूप में खोज करने वाले आदमी को चाहिए कि स्वपक्ष-परपक्ष (अपना-पराया) भाव को छोड़ कर वस्तु की खोज करें। तभी वस्तु की सच्चाई को पहचान सकते हैं।

[४३]

सच्चे साधु को पहचानने का उपाय

तुरन्दा तुरन्दिल रेन्ट्रिरिय लागुं
नुरन्दव कोन्डोलुगु वेंड-तुरन्दवर्
कोल्प कोडुप्पवट्रा कणिलां-मट्रवर्
उल्लं किडन्द वर्कै

भावार्थ :-साधुओं से ग्रहण किये गये वेष के द्वारा ही उनके बाह्य परिग्रह के बारे में जानकारी हो सकती है। उन साधुओं के आन्तरिक परिग्रह के बारे में तो दूसरों से ग्रहण करने वाली चीजों के द्वारा और दूसरों को देनेवाली वस्तुओं के द्वारा साफ-साफ समझ सकते हैं। यदि साधु परिग्रह संबंधी वासना को बढ़ाने वाली सोना, चांदी और रुपया आदि कीमती चीजें ग्रहण करता है तो वह साधु, बाह्य अभ्यन्तर परिग्रह त्यागी नहीं हो सकता।

[४४]

स्वर्ग प्राप्त करने का मार्ग

इन्दियक्कोलका विरुमु त्तोलिल् सेयदल्
सिन्दैली रप्पियत्तिन् मेलाक्कल्-पन्दम्
अरिद लिवै येय्दु मारोलुगु वार्क्के
उरिदागुं उंबरुलगु

भावार्थ :-पँचेन्द्रियों का दमन, आशा का विरोध, पाप बन्ध तोड़ना इन सदाचारों को आचरण में लाने वाले भव्य पुरुष स्वर्गादि सुगति को प्राप्त करते हैं।

[४५]

साधुओं का कर्त्तव्य

अललडैयप्पट्टान् अदर्कु माराय
निललदि तन्नियल्पे नाडु-अल्लदुपोल्
कामातियालाङ् कडुविनै क्कट्टविलतुप्
पोमारु सेय्वार् पुरिन्दु

भावार्थ :-सूर्य के ताप से तपे हुए आदमी उसके निवारणार्थ तत्प्रतिपक्षरूप छाया का आश्रय लेते है। उस छाया के आश्रय से आदमी के ताप का विमोचन भी हो जाता है। अर्थात् ताप का विमोचन छाया से हुआ। उसी के समान मोह, मद, मात्सर्य आदि दुर्भावों से होने वाले बन्धनों को सद्भावों के द्वारा तोड़कर मुक्ति पाने का प्रयत्न करने वाले ही साधु कहलाते हैं।

[४६]

सदाचार ही संरक्षक है

वेपत्तालाय वियादियै वेलवद् उम्
वेप्पमे यन्नार् विदियरिवार्-वेप्पं
तणिप्पदुउम् तट्पमे तान्सय् विनैयेंत्
तुणिप्पदुउम् तूय वोलुक्कु

भावार्थ :–समझदार मानव कहते हैं कि गर्मी से होने वाली बीमारी को गर्मी निवारण नहीं कर सकती। बल्कि ठंडापन ही शान्त कर सकता है। उसके समान अपने से किये गये कर्मों को अपना कर्म निवारण नहीं कर सकता। परन्तु सदाचार ही शान्त कर सकता है। इसलिये अपने आत्मा को कर्मों से छुड़ाने के लिए सदाचार का ग्रहण करना अत्यावश्यक है।

[४७]

देव-शास्त्र और गुरु का स्वरूप

तत्ताम तिट्टं तिरुट्ट मेंनविवट्रो
डेत्तिरत्तु मारा प्पोरुलुरैप्पर्-पित्तरवर्
नूलकलुं पोय्ये वन्नूलविदियि नोर्पवरुं
मालकल् एन नुणरर् पाट्र

भावार्थ :–वक्ता अल्पज्ञ होने से वस्तु तत्वों को मनमानी से वतला देता है। लोग उन तत्वों को विपरीत रूप में श्रद्धान

कर लेते हैं। विपरीत श्रद्धान होने से दर्शन और ज्ञान मिथ्या हो जाते हैं। अतः पूर्वापर विरोधात्मक वस्तु तत्वों को बतलाने वाला व्यक्ति पागल समझा जाता है। उनसे कहा गया शास्त्र भी मिथ्या शास्त्र है। उस शास्त्र के अनुसार चलने वाले साधु भी मिथ्या साधु कहलाते हैं। इसलिए वक्ता और वचन इन दोनों का प्रामाण्य होना अत्यावश्यक है। ऐसी अवस्था में देव शास्त्र और गुरु तीनों यथार्थ बन सकते हैं।

[४८]

सद्गति पाने के लिए सत्य का अवलंबन करना है

कुरुच्चेविडर्गल् कोल्विट्टुत्तान्मुल्
तेरुट्टि वलि सोल्लिच्चेरल्-तिरुट्टेंट्टं
मारुकोल विकडन्द मार्गत्ताल् नर्गतियिल्
एरुदुं एन्वारियलनु

भावार्थ :–जैसे अन्धा और बहरा दोनों प्रयत्न करने पर भी अपने वांञ्छित स्थान को प्राप्त नहीं कर पाते वैसे ही पंचेन्द्रियों के दमन का विचार और उनका आचरण किए बिना सद्गति प्राप्त करने का प्रयत्न मात्र करना लाभदायक नहीं है। इसका मतलब यह है कि सद्गति पाने के लिए चारित्र का आचरण करना अत्यावश्यक है। उसके बिना सद्गति की प्राप्ति नहीं हो सकती।

[४९]

धर्मोपदेश सुनने वाले का स्वरूप

अट्रियुं कारणत्तै आरान्दर वुरैयैक्
कट्रिन्द मान्दर् उरैप्पवे–मट्रदनै
माटिच पुरिन्द मदियुडैयालरे
केट्पर केलुमि यिरुन्दु

भावार्थ :-वस्तु तत्वों को यथार्थ रूप में तथा निस्सन्देह जानने वाले (सर्वज्ञ) पुरुष स्पष्टता से बतलाते हैं कि जानने योग्य वस्तु तत्वों को मोह और ममता के बिना जानें तथा यथार्थ धर्म का स्वरूप भी जानलें। तभी आदमी सच्चे श्रद्धान वाले (सम्यग्दृष्टि) हो सकते हैं। वे ही श्रद्धा और भक्ति-भाव के साथ धर्मश्रवण कर सकते हैं इसका मतलब यह है कि सम्यग्दृष्टि ही यथार्थ श्रद्धान वाला एवं धर्मश्रवण करने वाला हो सकता है।

[५०]

मोक्ष का मार्ग

उरुवुं ओलुक्कमुं नूलुं पोरुलुं
पोरुवि ल्तलैमगनो डिन्न-ओरुवादु
कण्डु करुति क्कयक्कर त्तोन्दैपिन्
कोण्डु विडैंक्क वरम्।

भावार्थ :–साधुलिंग (निर्ग्रन्थ स्वरूप) सदाचार शास्त्र,

उसमें बताये गये वस्तुओं के तत्व और उपमातीत सर्वज्ञ इन सबको सन्देह के बिना अच्छी तरह सोच-विचार निर्णय करलें। तभी आदमी सर्वज्ञ के द्वारा कहे गये निर्दोषमय धर्म का ग्रहण कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसका मतलब यह है कि मोक्ष प्राप्त करने के लिये देव-शास्त्र गुरु और धर्म का स्वरूप जान लेना परमावश्यक है।

[५१]

मोक्ष प्राप्त करने वालों का आचरण

नूलुणर्वु नुण्णोलुक्कं काट्टुविक्कुं नोय्यवां
सालिबन्मै काट्टुं सवक्चेंय्गै-पालवगुत्तुप्
पट्टिमैयालाणा परमार्त्तं पट्रिन्मै
ओट्टुवानुयन्दु पोवान्

भावार्थ :–प्रत्येक व्यक्ति का आचरण उसके शास्त्र परिज्ञान के परिमाण (योग्यता) को बतला देता है। अर्थात् यह समझदार है या मूर्ख। ढोंगी लोगों का मायाचारमय आचरण उसके शास्त्राभ्यास की कमी को साफ-साफ प्रकट कर देता है। जब व्यक्ति अपने को समय के अनुकूल बदल लेता है तो उसका आचरण मायाचारमय होने से परमार्थ स्वरूप को प्राप्त करने लायक नहीं हो सकता। सचमुच बाह्याऽभ्यन्तर ममता का का परित्यागी जो भव्य पुरुष है, वही परमार्थ पद प्राप्त करने का पात्र बन सकता है, न कि अन्य व्यक्ति अर्थात् मायाचारी को मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती।

[५२]

डरपोक आदमी की सहायता निष्फल है

पुनैपडै कण्डजि त्तर्काप्पान् ट्रन्न
विनैकडियु मेन्ट्रडि वीलतल्-कनैयिरुटकण
पल्लेलि त्तिन्न प्परौन्देरुन्द पूनैयै
इल्लेलि काक्कुमेन् ट्ररर

भावार्थ :–जैसे धान्यों को नष्ट करने वाले चूहों को देख कर डर के मारे भागने वाली बिल्ली से धान्यों की रक्षार्थ प्रतीक्षा करना व्यर्थ है ही वैसे अपनी पोशाक एवं जोश के साथ आने वाली सेना को देखकर डर के मारे अपने जीवन रक्षार्थ भागने वाले व्यक्ति से समर में विजय की प्रार्थना करना भी व्यर्थ है।

[५३]

लालची व्यक्ति धर्मोपदेशक नहीं हो सकता

माडमु मण्णीडुं कण्डडक्क मिल्लारैक
कूडि वलिपडुङ् कोलमै-आडरङ्गिन्
नोवगमाय् मिन्ट्रानोर् कूत्तनै अर्वेण्डिच्
सेवक्कमाय् निन्ट्र तुडैत्तु

भावार्थ :–नगरवाले, (पूजा) उदरपूरणार्थ राजवेष धारण कर रंगमंच पर खेलने वाले से अपने नगर का राजा हो कर निर्वाह एवं रक्षार्थ प्रार्थना करने के समान मनुष्य, झोंपड़ी

और महलों के भेदभाव को देख कर पुण्य-पाप के फलस्वरूप को जानता हुआ भी अपनी लालसा को रोक नहीं पाता है। इसका मतलब यह है कि मनुष्य को चाहिए कि हर तरह से अपनी लालसा को रोकें।

[५४]

सच्चे व्रत और तप के बिना धर्मोपदेशी नहीं बन सकता

नाट्रमोन्ट्रिल्लार पूवोडू सान्दिनै
नाट्रन्दान् वेण्डियदुपोलुं-आट्र
मरुवरु सीलमुं नौन्बु मिल्लारै
उरुपयन्वेडि क्कोल्

भावार्थ :–गन्ध से रहित चन्दन और फूलों से सुगन्ध की कामना करने के समान जिस व्यक्ति के पास निर्मल एवं निष्कलंक व्रत तथा तप नहीं है, उससे यथार्थ वस्तु (धर्म) के उपदेश की याचना करना बिल्कुल व्यर्थ है। इसका तात्पर्य यह है कि सच्चे तपस्वी ही धर्मोपदेशी हो सकते हैं।

[५५]

गुणविहीन व्यक्ति से सद्गुण की प्रतीक्षा करना निष्फल है

मालकंडल्सूल वैयत्तु मैयादाङ् कात्तोंबिप्
फाल करुदियन्न तुडैत्तेन्बर-मेलवरुत्तु
मन्निय नर्गुण मिल्लारै त्तांपोट्रित्
पुण्णियङ् कोडु मेनल्

भावार्थ :–जैसे पारावर से घिरे हुए इस विशाल संसार में बाँझ गाय को खूब पालन-पोषण कर उससे भरपूर दूध की प्रतीक्षा करना व्यर्थ है वैसे ही जिसके पास सद्गुण नहीं है ऐसे गुणविहीन व्यक्ति को सत्पात्र मान कर वन्दना और स्तवन आदि सत्कार से पुण्य प्राप्ति की कामना करना भी निष्फल है। इसका तात्पर्य यह है कि गुणी महात्मा से ही पुण्य प्राप्ति मिल सकती है न कि अन्य से।

[५८]

बहुमत के कारण झूठ सच नहीं हो सकता

उडंकमिलदं कोण्डा नोरुवन् पलरुं
विडंकण्डु नट्रिटुवे एग्ट्राल्-मडंकोण्डु
पल्लवर् कण्डदु नन्ट्रे न्रट्रमिल तोलिय
नल्लवनुं उण्णुमो नञ्जु

भावार्थ :–किसी व्यक्ति ने जीव और शरीर दोनों मिल कर चिरंजीवी बने रहने योग्य अमृत को प्राप्त किया है। उसे देख कर अधिक संख्या में बहुत से लोग मिलकर विष को अमृत और अमृत को विष कहें, तो भी वह बहुमत को मानकर अमृत को छोड़ नहीं सकता और विष को पी भी नहीं सकता अर्थात् जिस व्यक्ति के दिल में वस्तु का निश्चय ज्ञान हो जाता है वह कभी भी बदलता नहीं है।

[५७]

तत्वोपदेशक का स्वरूप

तन्नेयुं तन्नि पोरुलेयुं पट्टांकिर्
पन्नि यरमुरैक्क वल्लारै-मन्निय
सिट्टरेनच्चिट्ट न्तेट्रव दल्लारैच्
सिट्ट रेन्ट्रत्तल् सितैवु

भावार्थ :-सर्वज्ञ भगवान का कहना यह है कि जो अपने को तथा सम्पूर्ण वस्तुओं को यथावत् समझ कर बतलाते हैं वे ही तत्वोपदेशी, संपूर्ण वेत्ता, सर्वज्ञ और पूर्ण ज्ञानी हो सकते हैं। जो इसके विपरीत हैं उन्हें ज्ञानी कह कर प्रशंसा करना महान् अनर्थ हो जायेगा।

[२६]

एकान्त वादियों का स्वरूप

एत्तुणै कर्पिनुं एकान्म वादिकाल्
पुत्तियुं सोल्लुं पोलिविलवाय्-मिक्कं
अरिवनूल् कट्टारल वेनवे निकुं
एरिकदि मुंन्नील् सुडरे पोन्ट्र

भावार्थ :-आत्मा या पुद्गल आदि में एक वस्तु को पकड़ कर बोलने वाले एकान्तवादी चाहे जितने भी शास्त्र पढ़े हुए हों तो भी, उनकी बुद्धि और वचन दोनों यथार्थ ज्ञानियों के सामने शोभित नही होते। जैसे सारे संसार को प्रकाशमय

करने वाले दीप्तिमान सूर्य के सामने छोटासा तेल के दीपक का प्रकाश हो।

[५९]

सम्यग्दर्शन का लक्षण

अव्विनय मारुं मुंमूड मेण्मयमुं
सेव्विदि नीक्किच् चिनकडिन्दु-कव्विय
एट्टुरुप्पिनाय इयल्पिन कार्ट्टियार्
सुट्टरुप्पर्तार् गलियिट्रन्बु

भावार्थ :–छःतरह के अविनय, तीन प्रकार के मूढ़, आठ प्रकार के मद और शंका आदि आठ तरह के मल इन पच्चीस दोषों से रहित जो सम्यग्दर्शन होता है, उससे युक्त सम्यग्दृष्टि जीव चतुर्गति भ्रमण संसार सागर को पार करने में समर्थ होते हैं।

[६०]

अविनय का स्वरूप

अच्चमे आसै उलगितं अन्बुडैमै
मिक्क पासण्डमें नींत्तेय्व-मेक्कि
वणंकुदलव्विनयं एनबनवे माण्ड
गुणंगलि कुंन्द्रादवर्

भावार्थ :–अनन्तज्ञानादि गुणों के निधि स्वरूप सर्वज्ञदेव

कहते हैं कि भय, लोभ और लौकिक इनके कारण मिथ्यामन, मिथ्यादेव, मिथ्याशास्त्र और मिथ्यागुरुओं को भक्ति भावना के साथ नमन करना अविनय कहलाता है। अर्थात् ये सब विनय करने या आदर करने लायक नहीं है।

[६१]

छः प्रकार के आदरणीय व्यक्ति

मन्ननुडन्वयिर, माण्पुडैत् ताय् तन्दै
मुन्नि मुडिक्कु मुनियासान्–पन्नियङ्
काय कुरवर, इवरेन्ब वैयत्तु त्
तूय कुलञ्जाति याक्कं

भावार्थ :–बुद्धिमान लोगों का कहना यह है कि जो लोग उत्तम कुल और जाति को मानते हैं उनका कर्त्तव्य यह है कि राजा, माता, पिता, उत्तम साधु, विद्यागुरु और उनकी पत्नी इन छः व्यक्तियों का आदर करना चाहिए।

[६२]

झूठ को सच मानने वाले मूर्ख होते हैं

कण्डदवै त्तेरादवनुं कनाक्कण्डु
पेण्डिरै प्पेदुट्र क्कोन्ट्रानुं–पण्डितनाय्
वाल्विप्प क्कोण्डानुं पोल्वरे वैयत्तु क्
कोल् विपंक्कोलला निन्ट्रार्

भावार्थ :-संसार में झूठ को सच बताकर बेचने वालों की बातों को खरीदने वाले मूर्ख लोग यों समझे जाते हैं कि जैसे अपनी आंखों से देखी हुई बातों को नहीं मानने वाले, अपनी प्यारी पत्नी को रात के स्वप्न में विषय सेवन करते देख कर, उसे (सच मानकर) दूसरे दिन मार डालने वाले, खुद समझदार एवं पंडित होते हुए भी अपनी आजीविका के लिए दूसरों का मुंह ताकने वाले ये सब, अज्ञानी लोगों के समान हैं।

[६३]

पाषण्डी मूढ़

तोलकावि सोरै त्तुणिकील् विलवुडुत्तल्
कोलगा क्करंग कुडे सेरुप्पु-वेलोडु
पल्लेन्बु तांगुदल् पासण्डि मूडमाय्
नललवराल् नाट्टपडुं

भावार्थ :-मृगचर्म, गेरुवा वस्त्र, पेड़ से निकलने वाला एक तरह का कपड़ा, रुई का कपड़ा इस तरह के वस्त्रों को जमीन तक लटकाते हुए लंबा पहनना, एक दण्डी, द्विदण्डी, त्रिदण्डी आदि तपस्वी लोगों की लकड़ी, कावड़ी (दक्षिण में शैव लोग षण्मुख नामक देवता के वारुल कन्धे पर रखकर दोनों तरफ लटकाते हुए ले जाते हैं उसी को कावड़ी कहते हैं) कमण्डलू, छांता, जूता, त्रिशुलायुध, बाघ के दांतों या आदमी के दांतों की माला और हड्डियों की माला आदि इन सबको

अन्यमन वाले धारण करते हैं। यह उन लोगों की अनभिज्ञता है। इस तरह के आचरण को समझदार एवं यथार्थ वस्तु को अच्छी तरह समझने वाले परिज्ञानी लोग 'पाषण्डी मूढ़' कहते हैं।

[६४]

पाषण्डी साधुओं का वेष निरर्थक है

आवरमिन्ट्रि अडुवालुं आनै तेर्
मावरण मिन्ट्री मलैवानुं-तविल्
कलुदैयिलण्डं सुमन्दानुं पोलप्
पलुदागुँ पासण्डि याक्कुं

भावार्थ :-जैसे युद्ध में धार के विना शत्रुओं को मारने वाला तलवार रथ-गज-तुरंग आदि युद्ध सैन्य तथा युद्ध वीरों के व्यूह के बिना युद्ध करने वाले वीर का युद्ध गधे के ऊपर चढ़ कर चलने वाले व्यक्ति उस गधे के बोझ को अपने सिर पर ढो लेने के समान ये सब निरर्थक एवं निष्प्रयोजन हैं। वैसे ही नकली साधुओं बाह्याडंबर भी निरअर्थक एवं निष्प्रयोजन है।

विशेषार्थ :-युध में धार के बिना युद्ध करने वाला व्यक्ति जल्दी से जल्दी मारा जायेगा। युध में अन्य सहायता के बिना लड़ने वाला योद्धा भी जीत नहीं सकता। गधे पर सवार होकर चलने वाले व्यक्ति गधे के बोझ को ढो लेना मूर्खता

है। उसी तरह नकली साधुओं का बाह्य वेष भी फलदायक नहीं है अर्थात व्यर्थ है। इसका मतलब यह है कि बाह्याडम्बर पाखण्डी साधु न हो कर भावलिंगी सच्चे साधु होना आवश्यक है।

[६५]

आठ मद

अरिकुडमै मीक्कट्र आन कुलने
उरुवलि नट्रव मोंगिय सेलव
पोरिवनप्पिन् एंवोलना रिल्लेन्नु मेट्टुं
इरुदिक्कण् एमाप्पिल

भावार्थ :–समृद्ध ज्ञान, महान यश, ऊंचा कुल, अनोखा बल, उत्कृष्ट तप, भरपूर ऐश्वर्य, पुण्य की राशि और शरीर की सुन्दरता इन सब विषयों में मेरे समान कोई नहीं है, इस तरह मान करना, मद कहलाता है। अर्थात् यह मान सम्यक्त्व गुण का घातक है।

[६६]

गुस्सा करने से भयंकर हानि है

उलत्तुलन्दु कोण्ड उडंबिनैं क्कूट्रण्ण
इलन्दिलं देंगणुं नोंट्रच्–सुलन्ट्रुलन्ट्र
सुट्रत्तारल्लादा रिल्लैमाल् नन्नेंजे।
सेट्रत्तालल् सेय्वदुरै

भावार्थ :–रे भले मन! भवभवान्तर में एकेन्द्रयादि योनि में घूम-घूम कर आखिर बडी कठिनता से पाये हुए अलभ्य इस नर भव शरीर को काल (यमराज) एक न एक दिन खा जायेगा। फिर यह जीव, पूर्ववत् सब जगहों में (पुनरपि जननं पुनरपि मरणं) इस नीति के अनुसार जन्म लेता फिरेगा। इस तरह संसार के सभी सांसारिक अवस्था में सभी लोगों के साथ जन्म लेनेवाला जो जीव है, इसका कोई भी गैर रिश्तेदार नहीं है। अर्थात् सब जगह सब तरह के लोगों के साथ जन्म लेने के कारण हर कोई रिश्तेदार बन जाता है। कोई भी रिस्ते से बचता नहीं है। ऐसी नाजुक हालत में अपनी अवस्था को न समझकर अन्य लोगों पर गुस्सा करना निरी मूर्खता है। अत: बुद्धिमान लोगों का कर्त्तव्य यह है कि दूसरों पर सर्वथा क्रोध नहीं करना चाहिए।

[६७]

गुस्से को हटाओ और गुण को ग्रहण करो

उयिरुं उडंबुं पिरिवुण्मै युल्लिच्
सेमिरुं सिनमुं कडिन्दु–पयिरिडैप्
पुर्कलैन्दु नेर्पयन् कोलवु मोरुवन्पोल्
नर्पयन् कोण्डिरु क्कर्पाट्र,

भावार्थ :–आत्मा (जीव) इस शरीर से एक दिन अलग हो जायेगा। यह बात बिल्कुल निश्चित है। इस बात की अच्छी तरह जानकारी होने से हमें यह समझ लेना है कि जैसे

किसान धान के पौधों को सुरक्षित रखने के लिए घास आदि को निकाल फेंकता है, वैसे ही आत्मा के हित के लिये क्रोध (घास के समान भूत) आदि को निकाल फेंककर सुख के कारण रूप सत्कार्य को करना मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

[६८]

सम्यग्दर्शन के आठ अंग

ऐयं अवावे उवप्पुं मयक्किन्मै
सेय्पलि नीक्कल् निरुत्तुदल्–मेय्याग
अन्बुडमै आन्ट्र अरविलक्कं सेय्दलो
डेंट्रिवै एट्टां उरुप्पु

भावार्थ :–निश्शंका, निष्कांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ दृष्टित्वं, उपगूहनं, स्थितिकरणं वात्सल्यं और प्रभावना ये आठों सम्यग्दर्शन के मुख्य अंग हैं। इनके बिना सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। अतः आठों अंगों का पालन करना सम्यग्दृष्टि के लिए अत्यावश्यक है।

[६९]

धर्म की आवश्यकता

मक्कलुडंबु पेरर्करिवु पेट्रपिन
मक्कलरिवुं अरिवरिदु–मक्कल्

अरिव दरिन्दा ररत्तिन्वलुवार्
नेरिदलै निन्ट्रोलुगुवार्

भावार्थ :–प्रत्येक जीव को मनुष्य जन्म मिलना अति दुर्लभ है। वैसे मनुष्य जन्म मिलने पर भी संज्ञी पंचेन्द्रियता प्राप्त होना उससे भी दुर्लभ है। यदि आत्मा ने मनुष्य जन्म को भी पा लिया और यथार्थ का परिज्ञान करने वाला संज्ञित्व को भी प्राप्त कर लिया तो ऐसी अवस्था में उसका (जीव) कर्त्तव्य यही हुआ करता है कि यथार्थ धर्म का स्वरूप पहचान कर उस मार्ग पर चलना उससे कभी भी च्युत नहीं होना चाहिए। यदि जीव ऐसे सन्मार्ग से च्युत हो जायेगा तो उसे मनुष्य जन्म और संज्ञित्व फिर से कब मिलेगा कौन जाने ? अतः ऐसी अनोखी चीज जब कभी मिल जाती है तो उसी वक्त उससे फायदा उठा लेना ज्ञानी व्यक्ति का कर्त्तव्य हो जाता है।

[७०]

सदाचार से ही मनुष्य की उन्नति है

पिरन्द इड निनैप्पि न्पेर्तुल्ल लागा
मरन्देयुं माप्पेलियुं नेञ्जे:–सिरन्द
ओलुक्कतोडोन्ट्रि उयप्पोति यन्ट्रे
पुलुक्कूट्टु प्पोच्चा प्पुडैत्तु

भावार्थ :–रे पतित मन! तुमने (जीव सहित) इसके

पहले जहां-जहां जन्म लिया था उन्हें यदि याद कर देखेगा तो ऐसा मालूम होगा कि भूल से भी फिर से उन्हें स्मरण नहीं करना चाहिए। क्योंकि वे सारे जन्म जुगुप्सात्मक हैं। अतः तुम्हें कीटों के स्थान भूत इस शरीर को तुच्छ समझना है। भूल कर भी इसको महत्व नहीं देना चाहिये। उसके बाद तुम्हारा कर्त्तव्य यही है कि सर्वज्ञ आदि बड़े महात्मा लोगों से कहे गये सन्मार्ग पर चलकर संसार के दुःखों से छुटकारा पाना अत्यन्त आवश्यक है।

[७१]

बुद्धिमानों का कर्त्तव्य

तेसुं तिरनरिन्द तिट्पमुं तेन्दुंणन्दुं
मासु मनत्तगत्तिल्लामै-आसिन्ट्रिक्
कट्ल कडनरिदल् कट्टारिनत्ताराय्
निट्ल् वरैन्ते नेरि

भावार्थ :-यश और अच्छे बुरे विषयों को समझने योग्य दृढ़ चित्त वाले व्यक्ति को चाहिये कि यथार्थ तत्व को सोच-विचार कर समझना है। अपने चित्त में निष्कलंकता के साथ सत्य सिद्धांत का अच्छी तरह अध्ययन करना जरूरी है। अलावा इसके अपने कर्त्तव्य को समझना और विशेषविज्ञ (सर्वज्ञ) के पथ पर चलना यही समझदारों का कर्त्तव्य है।

विशेषार्थ :-आदमी यश के लिये अच्छे काम को छोड़कर

बुरे काम को भी कर डालता है। अतः मनुष्य को इन सबको समझने योग्य दृढ चित्त होना चाहिये। ऐसा दृढ चित्त होने पर भी यथार्थ और अयथार्थ तत्व को सोच-विचार कर समझना होगा। इस तरह समझने वाले व्यक्ति को चाहिये कि पक्षपात के बिना सत्य सिद्धांत का अच्छी तरह अध्ययन करे साथ ही साथ अपने कर्तव्य को समझ कर तथा विशेषविज्ञ भगवान जिनेन्द्र देव से कहा गया जो सत्य मार्ग है उन पर चले। इसका खास मतलब यह है कि बुद्धिमान व्यक्ति को सम्यग्दर्शन ज्ञान और चरित्र प्राप्त करना है।

[७२]

मानवों को शास्त्र ज्ञान की आवश्यकता

एप्पिर प्पायिनु एमा प्पोरुवर्कु
मक्कट् पिरप्पि पिरिदिल्ले-अप्पिरप्पिल
कट्रलु कट्रवै केट्टलु केट्टदन कण्
निट्रलु कूड प्पेरिन्

भावार्थ :-संसार में मनुष्य गति के समान अन्य गति सुख देने वाली नहीं है। क्योंकि इस मनुष्य गति में पढ़ने योग्य सद्विषयों को पढ़ते हैं और सुनने योग्य भले विषयों को अच्छे समझदार व्यक्तियों से सुनते हैं। उसके बाद पढ़े हुए या सुने हुए विषयों के अनुकूल सन्मार्ग पर चल सकते हैं। ये सब मनुष्य गति में ही प्राप्त होते हैं। अन्य गति में जन्म लेने वाले जीवों को इस तरह की सुविधाएं प्राप्त नहीं होती। अतः

मनुष्य गति अन्य गतियों से श्रेष्ठ है। इस गति में ही सम्यक् शास्त्र ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सच्चा शास्त्र ज्ञान प्राप्त करना मानव मात्र के लिए अत्यावश्यक हैं।

[७३]

विद्वत्ता की शोभा सद्विचार में है

कट्टुवु कट्टोरुपाल्लि पॅक्कडै पिडियु
मट्टोरुपा लपोग मरित्तिट्टुत–तेट्टेन
नेञ्जत्तुट्टिमै येलुतरुमेल इन्नादे
कञ्जतुट् कर्षट्टा पोन्ट्रु

भावार्थ :–सदाचार के अभाव में सीखने योग्य सद्ग्रन्थों का अध्ययन कर भरपूर ज्ञान प्राप्त करना, प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूरा करने योग्य जो सामर्थ्य है उसे शास्त्राधार ढूंढने में समय व्यतीत करना, जो धन सत्कार्य में उपयोग करना है उसे उस मार्ग से हटा कर दुराचार में लगाने योग्य भाव उत्पन्न करना ये सब, खाने वाले अपूप (खीर) में पड़े हुए कंकड़ के समान दुःख देने वाले हैं।

विशेषार्थ :–खाने योग्य जो पदार्थ है उसमें यदि ककड़ आदि पड़े हुए हों तो खाने वाले को उससे तकलीफ होती है। वैसे ही विशेष ज्ञानवान होने पर भी वह सदाचार से न रहे तो दुख ही दुख पायेगा। इसके अलावा कोई कमाये हुए धन को सदुपयोग में न लगाकर दुरुपयोग में व्यय करेगा तो दुख का

पात्र बनेगा। अतः लोगों को चाहिये कि ज्ञान पाने पर भी सदाचार प्राप्त करना अत्यावश्यक है और संचित धन को सदुपयोग में लगाना भी जरूरी है।

[७४]

समझदार की गल्ती को सब लोग देखते हैं

विदिप्पट्ट नूलुणन्दुं वेट्टुमै नीक्किक्
कदिपट्टनूलिनै क्कैयिंग ताक्किप्
यदिप्पट्टुवालवा र्पल्याय् सेय्दल
मदिप्पुरत्तिर् पट्ट मरु

भावार्थ :–समझदार एवं निर्वाण पद पाने के इच्छुक व्यक्ति का कर्तव्य यह हैं कि सदाचार को बताने वाले शास्त्र को अच्छी तरह मनन करने के साथ-साथ उनके विपरीत आचरण से सदा दूर रहना चाहिये। अलावा इसके भव्य जीवों की ज्ञानवृद्धि के वास्ते अत्यधिक शास्त्रों की रचना भी आवश्यक है। साथ ही साथ अपने ख्याल में रखने की बात यह है कि दूसरों से खण्डन करने योग्य दुराचार आदि बुरे कार्य को कदापि नहीं करना चाहिए। यदि कोई करेगा तों वह चन्द्रमा के कलंक की तरह सदोषी बना रहेगा। अतः समझदार व्यक्ति को चाहिए कि अपने आचरण में सतर्क रहे

[७५]

पढे हुए मूर्ख से दूर रहें

पट्रोडु सेट्रं भयमिन्ट्रिफल पोरुलं
मुट्र उणर्न्दान् मोलिन्दन कट्रं

कडैयाय सेय्दोलुगुं कारिरिविनारै
अडैय। रत्नरिडैयाार्

भावार्थः—आस-पास और भय-भीति से रहित जो अरहन्त परमात्मा हैं, उनसे कहे गये तत्वों को सम्पूर्ण रूप से समझने के बाद भी जो व्यक्ति खण्डनीय दुष्कार्यों को करता है तो ऐसे अज्ञानी के साथ बुद्धिमान लोग कदापि संपर्क नहीं रखते हैं।

विशेषार्थः-बुद्धिमानों को हमेशा सत्कार्य ही करते रहना चाहिये दुष्कार्य से दूर रहना आवश्यक है अन्यथा जनता उसे दूर कर देगी।

[७६]

लक्ष्मी की कृपा विद्या आदि से ही होता है

नल्विनैप्पि नल्लाल् नरुंतामरैयालुं
सेल्लाल् सिरन्दार्पि नायिनुं-नल्विनैलान्
ओतुं ओलुङ्कमुं दानमुं उलवलि
नीत्तल् ओरु पोलुदु मिल्

भावार्थः—कोई व्यक्ति धन कमाने का कितना भी प्रयत्न करें मगर पुण्य कर्म के बिना कमलवासिनी लक्ष्मी उस के पास नहीं आती। वह पुण्य कर्म विद्या, सदाचार और सत्पात्र दान से प्राप्त होता है। जिस व्यक्ति के पास विद्या आदि मौजूद हैं, लक्ष्मी उसे छोड़ कर कभी भी दूर नहीं जाती।

[७७]

अपने को आप (खुद) ही ऊँचा बनाना हैं।

तन्नि पिरिदिल्ले देय्वं नेरिनिर्पिल्
ओन्ट्रानु न्तानेरि निल्लानेल्-लन्नै
इरैवना च्चेय्वानु न्तानेला न्तन्नैच्
सिरुवना च्चेय्वानु न्तान्

भावार्थः-एक व्यक्ति खुद सदाचार के मार्ग पर चलेगा तो उससे बढ़कर कोई दूसरी महान् आत्मा नहीं है। यदि कोई सदाचार को छोड़कर दुराचार के मार्ग पर चलेगा तो उससे निकृष्ट आदमी कोई नहीं है। अतः अपने को सर्वेश्वर बनाना भी अपने हाथ में है अथवा सबसे नीचा बनना भी अपने हाथ में ही है।

विशेषार्थः-अपने को ऊँचा या नीचा बनाने वाला कोई परमेश्वर अलग नहीं है। बल्कि अपने पास ही है। आत्मशक्ति को अच्छी तरह परखकर अपनी आत्मा को सर्वेश्वर बनाने की कोशिश करनी चाहिये, इसी में भलाई है।

[७८]

अशुभ कर्म को छोड़कर शुभ कर्म करने का प्रयत्न कर

अंजिनायेनु मडैव नडैयुंकाण्
तुंजिनायेन्ट्रु विनैविडा-नेंजे !
अलुदा येनक्कूट्रोलिया दाट्रत्
तोलुदेन् निरैयुडैयै यागु

भावार्थः–रेमन! तू दुःखों को देखकर यदि डरेगा तो जो कुछ होने का है, सो हो ही जायगा। रुकेगा नहीं। तुम्हारे किये हुए पाप कर्म का फलस्वरूप जो दुख है, उसे भोगे बिना यदि जाएगा तो वह पाप कर्म अगले भव में भी तुम्हारे पीछे जरूर आयेगा। छोड़ेगा नहीं। तू मरने के लिये डर रहा है या रो रहा है, ऐसा समझ कर यमराज तुम्हें छोड़ कर नहीं जाएगा। बल्कि लेकर ही जायगा अतः तुमसे बड़ी नम्रता के साथ कह रहा हूँ कि तुम अच्छे गुणवान बनो और भरपूर पुण्योपार्जन करो।

विशेषार्थः–आचार्य प्रत्येक मनुष्य से संबोधन कर रहे हैं कि अपने से किये हुए जो पाप का फल है, उसे भोगना ही पड़ेगा। डरने से छूट नहीं मिलतो। अतः बाद में पश्चाताप करने के पहले पाप को छोड़ कर पुण्य का उपार्जन करो जिससे दुःख भोगने को संभावना ही न पड़े।

[७९]

आत्म प्रशंसा की आदत को छोड़ो

पलकट्रों यामेन्ट्रु तर्पुकलवेण्डा
अलकदिर् ञायिट्रे क्कैक्कुडैयुं काक्कुं
सिलकट्रार्कण्णुं उलवां पलकट्रिक्
कच्चाणि यन्दोर् सोल्

भाथार्थः–प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि हम् ही सबसे बड़े हैं और सब कुछ जानते हैं दूसरा कुछ नहीं जानता। इस तरह डींग मारना अच्छा नहीं है, क्योंकि महान् विशाल,

किरण वाले सूर्य को छोटा सा छाता रोक देता है। वैसे ही बहुत से ग्रन्थों के खोजपूर्ण अध्ययनकरनेकेव्यक्ति को थोड़ासा पढ़ा हुआ व्यक्ति का वचन पहिये की कीली के समान सहायक बन सकता है।

विशेषार्थः—जैसे छोटासा छाता, सूर्य की महान् किरणों को रोक देता है। वैसे ही अध्याधिक पढ़े हुए व्यक्ति को थोड़ासा पढ़ा हुआ व्यक्ति का वचन सुनने एवं समझने लायक बन जाता है। इसलिये किसी को भी प्रशंसा करना अच्छा नहीं है, सर्वथा अनुचित है।

[८०]

सहनशीलता का लक्षण

लन्नैयोरुवन् इगलन्दुरैप्पि न्लावनवनुप्
पिन्नैयुरैया प्पेरुमैयान्-मुन्नै
विनैप्नुपमायिट्रा मैन्ट्रदन कण् मेय्मै
निनैक्कोलिय नैंजिनो यिल्

भावार्थः—एक व्यक्ति दूसरे को गाली देता है। मगर सुनने वाला व्यक्ति बदले में गाली न देकर अपने मन में विचार करता है कि विचारा यह आदमी हमारे पुरातनकर्म को गाली के द्वारा खरीद रहा है। अर्थात् इसके कारण अपना पुरातन कर्म नष्ट हो रहा है अतः हमें दुखित होने की जरूरत नहीं है। इसके लिये खुशी मनाना चाहिये। इस तरह की भावना

आने वाले के दिल में गाली सुनने से दुख नहीं होता। बल्कि असीम शान्ति मिलती है।

विशेषार्थ:—व्यक्ति दो तरह के होते हैं। एक गाली देना वाला और दूसरा सुनने वाला गाली सुनने वाले के दिल में यदि गुस्सा आयेगा तो दुख होगा। उसके बदले गाली देने वाले पर पश्चात्ताप एवं अपने कर्म की निर्जरा का चिन्तवन करेगा तो उसे एकदम शान्ति एवं सन्तुष्टि ही होगी। न कि दुःख अतः हर एक व्यक्ति को सहनशीलता का ग्रहण करना अतीव श्रेष्ठ है।

[८१]

सहनशीलता ही महान् तप है

एल्लिपपिररुरैक्कुं इन्नाच्चोल् लन्नेंजिल्
कोल्लिवैत्ता पोरु कोडिदेनिनुं-मेल्ल
अरिवेन्नुनीराल् अवित्तोलुक लाट्रिन्
पिरिदोन्ट्रुं वेण्डा लवं

भावार्थ:—कोई व्यक्ति अपने को अपमान जनक बातों से गाली देता है तो उसे सुनकर अपने दिल में आग लगने के समान दुख होता है। परन्तु ऐसे समय में उस दुख को विवेक रूपी पानी से हमें शान्त करना है। यदि हम ऐसा करेंगे तो अपने को इससे बढ़कर कोई दूसरा तप नहीं हैं।

विशेषार्थः–क्रोध मनुष्य का सबसे बलवान शत्रु है। कोई व्यक्ति बुरी तरह से गाली देता है तो सुनने वाले को भयंकर क्रोध आता है। वह क्रोध आदमी को आग के समान जला देता है। ऐसे समय में विवेकी पुरुष को चाहिये कि अपने परिज्ञान-रूपी जल से क्रोध रूपी अग्नि को शान्त करें। तब तो उसे दूसरे तप की जरुरत नहीं है। समता के बिना कोई दूसरा तप है ही नहीं।

[८२]

कठिन वचन प्रेम का बाधक है

नम्मै प्पिर सोल्लु सोल्लिवै नीपिररै
एण्णादु सोल्लु इलुक्किवै येन्ट्रेण्णि
उरैगल् परियादु उरैप्पारिल् यारो
कलंकण लिल्ला दवरु

भावार्थः–लोग अपने बारे में तो तारिफ को बातें चाहते हैं। मगर दूसरों पर बिना विचारे गाली गलौच देने लगते हैं। इस तरह दूसरों पर अविचार पूर्वक कठिन वचन बोलना यह तो समझदारों का कर्त्तव्य नही है। बल्कि मूर्खों का कार्य माना जायेगा।

विशेषार्थः–मनुष्य को हमेशा दयावान होना चाहिये। गाली सुनने से अपने दिल में जितना दुख होता है, उतना दुख दूसरों को भी होगा। अतः गाली देकर दूसरों के दिल को दुखाना नहीं चाहिये। जिसके पास इस तरह की भावना न हो तो उसे समझदार या विवेकी पुरुष नहीं माना जायगा।

[८३]

जिसने पहले किया है उसे पीछे भोगना पड़ेगा

पिरक्किना सेय्द्रलिर्पेदमै यिल्लै
पिरक्किन्ना देन्ट्रु पेरिट्टुत्-तनक्किन्नां
वित्त विलैत्तु विनैलिप्पक् काण्डलिरु
पित्तु मुलवो पिर

भावार्थः–दूसरों को दुख देना तो सबसे बड़ी मूर्खता है। दूसरों को दुख देने से हम बुरा नाम पाते हैं। मगर दुखरूपी जो फल मिलता है, उसे पाकर मनुष्य को अनन्त काल तक दुख भोगना पड़ता है। अतः आचार्य संबोधन कर पूछते हैं कि-बोलो, इससे बढ़कर कोई मूर्खता हो सकती है क्या ? नहीं।

विशेषार्थः–दूसरों को दुख देना महान् पाप है। हमतो दूसरों को दुःख देते समय खुशी मनाते हैं। मगर उससे होने वाले पाप से मनुष्य को चिरकाल तक दुःख भोगना पड़ता है। अतः कभी भी दूसरों को दुःख नहीं देना चाहिये।

[८४]

दूसरों का अपवाद अधमपने का लक्षण हैं

मुन्निन्ट्रोरुव न्मुगत्तिनुं वायिनुं
कन्निन्ट्रु रुक क्कलन्दुरैत्तु प्-पिन्निन्
ट्रिलित्तु रैक्कुं सान्ट्रो रै अंञ्जियै देवरु
विलित्तमैया निन्ट्र निलै

भावार्थः–एक व्यक्ति दूसरे को देखकर पत्थर भी पसीज जावे, इस माफिक प्रेम भरी बातों से स्वागत करता है। और हद से ज्यादा उसकी तारीफ भी करता है। लेकिन उसके जाने के बाद उसी व्यक्ति की खूब निन्दा करता है। देव लोग बेटकी-लगाये देखने का मतलब यह हो सकता है कि अगर हम आखें बन्द कर लें तो यह धूर्त व्यक्ति अपनी (देव लोगों को) भी निन्दा कर सकता है; मानों इसी डर के मारे देव लोग अपलक (बिना पलक लगाये) लगाये देखते रहते हों।

विशेषार्थः–आचार्य देवों की जो आखें हैं उनकी बेटकी को आधार बनाकर अतिशयोक्ति के द्वारा परनिन्दक का खूब विमर्शन करती हैं।

[८५]

दूसरों की निन्दा न करने वाला सर्वश्रेष्ठ है।

पोय्मेर्किडवाद नानुं पुरनुरैयेत्
नन्मेर्पडामै चविर्पानुं-मेय्मेल्
पिणिप्पण् पलियामे पेट्र पोलुदे
तणिक्कु मरुन्दु तलै

भावार्थः–जो व्यक्ति दूसरों के निन्दात्मक वचन को अपने पास आने नहीं देता, और झूठ न बोलने एव सच बोलने से होने वाला जो सद्गुण है उससे सम्बन्ध रखता है। ऐसे व्यक्ति के बारे में समझना चाहिये कि उसने जन्म परपरारूपी रोग के लिये उचित औषधियाँ प्राप्त कर ली हैं।

विशेषार्थ:–दूसरों की निन्दा न करने वाला, असत्य वचन न बोलने वाला और सत्यमात्र-प्रतिपादन करने वाला सज्जन व्यक्ति, जन्म परंपरारूपी दु:खों को काटकर सदा आनन्दमय सुख की प्राप्ति कर लेता है।

[८६]

मदिरा पीने से होने वाला दुर्गुण

ओलियुं ओलिसान्ट्रु सेय्गेयुं सान्ट्रोर्
तेलिवुरैय रेन्ट्रु रैक्कुं देंसु-कलियेन्नुं सु
कट्टंरैयाल् कोदप् पडुमेल् इवैयेल्लां
विट्टोलियुं वेराय् विरेन्दु

भावार्थ:–बड़े से बड़े सज्जन लोग कहते हैं कि यह व्यक्ति उत्तम एवं सदाचारी है; अपनी योग्यता के अनुकूल भला काम करता है और अच्छा समझदार भी है। इस तरफ तारीफ करने योग्य व्यक्ति यदि मदिरा पीने लगता है तो उसके सारे के सारे सद्गुण विलीयमान हो जाते हैं। लोग उसे नीचता की दृष्टि से देखने लगते हैं।

विशेषार्थ:–मदिरा पीने वाले को लोग नीच, उद्दण्ड, दुराचारी, निर्लज्ज एवं दुष्ट समझते हैं। उसके पास लवलेश मात्र भी सद्गुण नहीं रहते। केवल दुर्गुण ही दुर्गुण रहते हैं।

(८७)

जुआ से होने वाला नुकसान

ओदलुं ओदियुर्णदिलुं सान्ट्रोराल्
मेदै येनप्पडुं मेन्मैयुं-सूदु
पोरुमेन्नुं सोल्लिनाल् पुल्लप्पडुमेल्
इरुलां ओरुङ्गे डूवै

भावार्थः–कोई व्यक्ति कई शास्त्रों के जानकार हो, कई शास्त्रों को खोज करने वाला हो तथा बुद्धिमान एवं मर्मज्ञ के रूप में प्रशंसात्मक हो, ऐसा व्यक्ति यदि जुआ खेलने लगेगा तो उसके सारे गुण नष्ट हो जाते हैं और लोग उस की निन्दा करने लगते हैं। अतः बुद्धिमानों को चाहिये कि जुआं न खेलें। और भला आदमी बनें।

[८८]

मर जायें मगर मान जायें

तेनक्कुत् तगवलल सेय् दांगोरांट्राल्
उणर्कुं विरुंबुंगुंडरै-वनप्पर
अंबिट्राल् वाडलेपोल अगत्तडक्किक्त्
तेंबत्ताङ् कोल्वदरिवु

भावार्थः–जैसे पानी न होने से कमल की लता मुरझाई जाती है वैसे अपने पेट के लिये खाना न मिले, शरीर की शोभा बिगड़ जायें एवं कमजोरी हो जाय परवाह नहीं। सबको

धीरता के साथ सह लेना है। परन्तु अयोग्य कार्य को कदापि नहीं करना चाहिये।

विशेषार्थ–आदमी को चाहिये कि हमेशा अपने योग्य काम को ही करें। चाहें भूखा रहना पड़े या अशक्तता (कमजोरी) आ जाय तो भी अयोग्य कार्य को कदापि नहीं करना चाहिये।

[८६]

व्यभिचार नहीं करना चाहिये

अरनुं अरनरिन्द सेय्गैयुं सान्ट्रोरु
तिरनुडैय नेन्ट्रु रैक्कुं देसुं-पिरनिल्
पिलैत्तानेन प्पिरराल् पेसप्पडुमेल्
इलुंक्कां ओरुंगे इवै

भावार्थ:–समझ लो कि एक व्यक्ति धर्मात्मा है और वह अपनी महानता के अनुसार कर्त्तव्यशील भी है तो, सभ्य लोग उसे सदाचारी के नाम से पुकारते हैं और गौरव भी देते हैं। ऐसी अवस्था में यदि वह अपनी मान-मर्यादा को छोड़ कर अन्य स्त्री के साथ व्यभिचार करता है तो उसके सारे गुण नष्ट हो जाते हैं और वह निकृष्ट आदमी समझा जाता है।

विशेषार्थ:–व्यभिचारी व्यक्ति की सारी दुनियाँ निन्दा करती है। उसके सारे गुण-अवगुण के रूप में बदल जाते हैं। अतः आदमी को चाहिये कि व्यभिचारी न होकर शीलवान बनें और इह-परभव के लिये यश एवं पुण्य कमालें।

[९०]

कामवेदना से होने वाली हानि

सावाय् नी नेंजमे ! सल्लिय वेन्नेनी
आवदन्कण् ओन्ट्रानुं निर्कोट्टाय्-ओवादे
कट्टलित्तु क्काम क्कट कॅन्नै ईर्पाये
विट्टैलुंगाल् एन्नावाय् सोल्

भावार्थः–रे मन् तू मर जाय, तेरा नाश हो, तेरे कारण से ही मैं कामवासना में फँस कर चंचल बना रहता हूँ। तू मुझे सदाचार के मार्ग पर स्थिर होने नहीं देता। तू ने झंझावात बन कर मुझे घुमाया है। तुमने मेरी स्थिरता को भी खतम कर दिया। मुझे आशा रूपी समुद्र की ओर ले जाता है। अरे चंचल मन, मैं तुमसे पूछता हूँ कि यदि मैं तुम्हरा नाता छोड़ कर अलग हो जाऊँ तो तेरी हालत क्या होगी ? बताओ न !

विशेषार्थः–मन के कारण ही मनुष्य बिगड़ जाता है। सदाचार पर स्थिर नहीं हो पाता। यदि कोई व्यक्ति अपने मन को स्थिर रख लिया हो तो फिर क्या ? नर, नारायण बन-जायगा। इसमें आश्चर्य करने की बात नहीं है।

[९१]

मोहवासना को हटाना चाहिये

पलियोडु पावत्तै धाराय् नी कन्ट्रिक्
कलिपेरुङ् कामनेय् वाङ्ि्ग-वलिपडादु

ओडुमन नेविडु त्तोन्नै विरैन्दु नी
नाडि वकोल मट्रोरिडं

भावार्थः–रे मन, मेरा रास्ता छोड़ कर, बड़ी भारी आशा रोग से भरी महिलाओं के पीछे वेग से दौड़ता है। मान-अपमान, योग्य-अयोग्य, पाप-पुण्य कुछ भी नहीं देखता। अतः अरे मन, मेरा संबन्ध छोड़ कर तेरे-योग्य जगह ढूँढ लो जल्दी से जल्दी यहाँ से भाग जा।

बिशेषार्थः–मन पानी की तरह नीचे की ओर दौड़ता है। स्त्री के पीछे लालायित होकर भागना और कर्तव्य-अकर्तव्य की चिन्ता न रखना तो उस का सरस स्वाभाविक गुण है। अतः मनुष्य को चाहिये कि-विवेकी होकर मर्यादापूर्वक काम करें कर्तव्यशील बन कर रहें।

[९२]

कामी पुरुष निकृष्ट है, मानव नहीं है

मक्कलुं मक्कलल्लारु रग्न इरण्डु
कुप्पैत्तो कुण्डुनीरु वैयक-मक्कल्
अलक्कुं करुत्रिम ट्रोण्पोरुल् ओन्ट्रो
तुलक्कुरु वेल्वलैयार् तोल्

भावार्थः–यह संसार अगाध सागर से घेरा हुआ है। ऐसे इस संसार में दो तरह के मानव समुदाय होते हैं। पहला मानुष समुदाय है दूसरा अमानुष समुदाय हैं। इन दोनों को जाँचने के

लिये यही उपाय बताया गया है कि जो दूसरों के धन एवं महिला रत्नों पर निस्पृहता के साथ आवांक्षित रहता है वह मानुष कहलाता है, अन्य अमानुष याने पशु वत् अधम माने जाते हैं।

विशेषार्थ:-स्व धन एवं स्वदार संतोष में जो लीन है वही मनुष्य है। अन्य पशु हैं। अर्थात् जो पर धन में लालसी और परदार में लम्पटी होते हैं, वे मनुष्य नहीं है किन्तु पशु के समान गये बीते हैं।

[९३]

सन्मार्ग दर्शक ही सुमित्र हैं

इम्मै अडक्कत्ते च्चेय्दु पुगलाक्कि
उम्मे उयर्गतिक्कुंय्त्तालाल्-मेय्मेंये
पट्टां गरमुरैक्कुं पण्पुडैयालरे
नट्टारेनप्पडुवारु

भावार्थ:-मित्र बनाने योग्य व्यक्ति का लक्षण है कि इस भव में मन वचन काय के अन्दर संयम की शिक्षा देने-वाला, सदाचार के द्वारा यश को बढ़ाने वाला, परभव में मोक्ष प्राप्त करने योग्य मार्ग बताने वाला और स्वाभाविक एवं सच्चे धर्म की शिक्षा देने वाला व्यक्ति ही सन्मित्र हो सकता है।

विशषार्थ:-हर व्यक्ति चाहता है कि हम कुछ न कुछ आत्मोन्नति करें। मगर उस मार्ग को बतलाने वाला कोई नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में जो व्यक्ति सच्चे धर्म की शिक्षा देकर

उद्धार करता है और मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग दिखलाता है, वही सच्चा मित्र हो सकता है।

[६४]

मिथ्यामार्ग से बचाने वाला ही सन्मित्र है।

नट्टारेनप्पडुवा नाडुं गाल वैन्दुप्
पट्टां पलपिरप्पु त्तुन्बमेन्-रोट्टि
अरनेरि कैविडा दासारंगाट्टिप्
पिरनेरि तेक्कि पंवरु

भावार्थः—इस अनादि संसार में हम कई योनियों में जन्म लेकर अपार दुःख भोग चुके हैं। इसलिये दुःख के कारण भूत मिथ्यामार्ग से हट कर सन्मार्ग (धर्म) पर आरूढ होना चाहिये। जो व्यक्ति इस तरह धर्म स्वरूप की व्याख्या बताकर सन्मार्ग पर लगा देता है, वही उत्तम मित्र है। अन्य नहीं।

विशेषार्थः—संसार अपार है। इसमें चौरासी लाख योनि भेद हैं। इनमें हम 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं' इस नीति के अनुसार बार-बार जन्म लेकर असंख्य दुःख भोग चुके हैं। इतना होते हुए भी हमें सच्चे मार्ग का भाव नहीं आता। हम बुरे मार्ग पर ही चलना चाहते हैं। अतः हमें सोचना चाहिये कि दुःख क्यों होता है और उसका कारण क्या है? तब हमें जबाब मिलेगा कि विवेकहीन मिथ्या आचरण ही है। दुःख के कारण युक्त ऐसे मिथ्या आचरण को छोड़ कर हमें सदाचरण को ही अपनाना है। यही आत्मा के लिये अतीव लाभदायक

है। इस तरह आत्महित धर्मोपदेश देने वाला व्यक्ति ही सन्मित्र हो सकता है। अन्य व्यक्ति कदापि नहीं।

[६५]

निस्वार्थ मनुष्य ही निर्वाण दाता है

नट्टारै वेण्डिन्नरुमेन्कद्रप्पिनाय्
विट्टारै यल्लाल् कोलल्वेण्डा-विट्टार्
पोरिसुणंगु मेन्मुलै प्पोन्ननाय् ! उय्प्परु
मरितर विल्ला क्कदि

भावार्थः-सुगन्धमय बालो से विलसित हे बनिते ! यदि तुम्हें अच्छे लोगों की संगति करनी है तो जो आशातीत महान् त्यागी हैं उन्हीं की संगति करो। स्वार्थी एवं लपटी की संगति कदापि नहीं करनी चाहिये। सुन्दरता एवं कोमलता से भरी तथा लक्ष्मी के समान रहने वाली हे कान्तिमते ! तुम्हें निर्ममत्वी एवं वीतरागी ही अजरामर स्वरूप निर्वाण पद को प्राप्त करा सकते हैं। अन्य नहीं। अतः उन्हीं के निकट जाओ।

विशेषार्थः-मनुष्य दो तरह के होते हैं। त्यागी और मोही। त्यागी हमेशा यही क्रिया करता है कि अपनी आत्मोन्नति के साथ-साथ अन्य जीवों की उन्नति भी। उनके दिल में लव-लेश मात्र भी ममता नही रहती। 'परोपकाराय इदं शरोर' इस नीति के अनुसार परोपकार के लिये ही जोवित रहते है। जहाँ स्वार्थ का गन्ध मात्र भी नहीं है वहाँ परमार्थ के सिवाय और क्या रहेगा ? ऐसे निस्पृह एव निराकुल ज्ञानी

की संगति से मनुष्य निर्विकार एवं निजानन्द स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है। इसके विपरीत जो मोही है वह संसार भ्रमण के कारण भूत मोह-माया जाल में फँसा कर दीर्घ संसारी बना देगा।

अतः हमें दुःख से मुक्त होना है तो संसार सागर से पार करने वाले महान् वीतराग तपस्वी के संपर्क में ही जाना है।

[६६]

स्वार्थ के अभावरूप महान् लोग वास्तविक माँ के समान है

कालोडु कैयमुक्कि प्पिल्लैयै वाय् नेरित्तुप्
पोलोडु नेय्पेटयुं तायनैयरु-साल
अडक्कत्तै वेण्डि अरन्वलिदु नालुं
कोदुन्तु मेक्कोण्डोलुगुवारु

भावार्थः—ऐसे भी महान् धर्मात्मा लोग हैं जो जबर्दस्ती से दबाकर (खींच कर) रोज धर्म का बोध कराते रहते हैं। उन सर्वश्रेष्ठ महात्माओं को ऐसा समझना चाहिये कि पुत्राहलादिनी माँ, अपने बच्चे के हाथ पैर को जोर से दबाकर मुंह में एरण्ड तेल पिला देती है, उसी के समान समझना है।

विशेषार्थः—पुत्र पर प्रेम करने वाली और उसके हित की अभिलाषा रखने वाली माँ कड़वा जो एरण्ड का तेल हैं उसे बच्चे के मुंह पर जबर्दस्ती से पिलाती है। बच्चा हाथ-पैर ठोकता है और खूब रोता है फिर भी उसे छोड़ती नहीं और

जबर्दस्ती पिला ही देती है। उस का ख्याल यह रहता है कि बच्चे का पेट साफ हो और वह आराम से रहे। उसी के समान जनहितैषी महात्मा लोग भी लोगों को कडे शब्दों से ठोक कर सच्चे धर्म का मार्ग बतलाते हैं और अपने सदाचार के रास्ते पर खींच ले जाते हैं। उन महात्माओं का ध्येय यही रहता है कि किसी तरह से लोगों का कल्याण हो।

[९७]

बड़ों की संगति से धन की वृद्धि होगी

कलियुं पगलेलां कालैयेलुन्दु
पलियोडु पांव पडामै-ओलुगिनार्
उय्क्कुं पोरियारै नाडि उलितंरुमे
तुय्क्कुं पोरुलेल्लां तोक्कु

भावार्थः–क्रोध-मान-माया-लोभ आदि कषाय रूपी जो अनाचार हैं उनके सम्बन्ध सेअलग रहने वाले बड़े महान् पुरुष को, जो व्यक्ति प्रतिदिन सुबह उठकर दर्शन करता है उस सज्जन पुरुष के पास भोग सामग्री के कारणभूत सारी संपत्तियाँ अपने आप आकर समाविष्ट हो जायेंगी।

विशेषार्थः–हर व्यक्ति क्रोध-मान-माया और लोभ के कारण से ही अत्याचार और अनाचार करता है। जो व्यक्ति उन क्रोधादि कषायों को जीत लिया हो ऐसे बड़े महान् पुरुष को, प्रतिदिन प्रातः उठकर दर्शन (देव दर्शन) करने वाले भव्य आत्मा के पास सारी ऐच्छिक सम्पत्तियां अपने आप आकर जुड़ जाती हैं। यह सब देवदर्शन की महिमा है। इसका खास

मतलब यह है कि रोज देवदर्शन करने वाले को धन-धान्यादि सारी संपत्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। अन्यत्र कहा भी है।

श्री मुखालोकना देवः श्रीमुखालेकनं भवेत्।
आलोकन विर्हनस्य तत्सुखस्यात्त यत्कुतः॥

[९८]

बुरे लोग चोर के समान है

काय उरैत्तु ककरुमं चिदैयादारु
तायरो डाव्वारो तक्काकुं-वाय् पणिन्दु
उल्ल मुरुग उरैत्तु प्पोरु लकोलवार्
कल्लरो डोव्वारो तां

भावार्थः—लोगों को बुरे मार्ग पर लगाने के लिये धूर्त लोग मीठी-मीठी बातें बताकर अपनी ठगाऊँ काम को करके ही छोड़ते हैं। ऐसे लोग माँ की तरह हित चिन्तक कभी बन सकते हैं क्या ? कदापि नहीं। सुनने वालों का दिल पिघल जाय, इस तरह की करुणा भरी बातें बता (बना) कर सारी संपत्तिको ऐंठकर भागने वाले दुर्जन तो चोर के समान हैं अथवा चोर ही है।

विशेषार्थ—लोग दो तरह के होते हैं। एक सज्जन दूसरा दुर्जन। सज्जन तो लोगों को हमेशा सन्मार्ग पर ही लगाते हैं। मगर दुर्जन तो लोगों को ठग कर अपना काम बना लेता है। अलावा इसके वह लोगों की सारी संपत्ति को ठग कर ले

भागता है। इसलिये हमें यह समझ लेना चाहिये कि सज्जन जो होते हैं, वे तो माता के समान सभी को हित करने वाले हैं। मगर-दुर्जन तो चोर के समान अहित ही करते हैं। क्योंकि चोर दूसरों के हितोऽहित पर विचार नहीं करता। पैसे के लिये दूसरों का गला घोंटता है और मार भी डालता है। अतः हमें चाहिये कि लोगों को पहचान कर दुर्जन से दूर रहें और सज्जन का संपर्क करें।

[९९]

दुर्जनों का संपर्क दुखदायी है

अरु तोलिल् नीत्तारै मेच्चा लवट्रोडु
उरुनरै च्चान्द्र्य प्पोदल् इरुवरैमेल्
कण्णिन्मुडव न्तुणैयाग नील्कानं
कण्णिला न्सेन्ट्र तुडैत्तु

भावार्थः–मिथ्या देव वन्दना आदि छे तरह के अविनयों से रहित व्यक्ति, अविनयों के आचरण वालों से संसार सागर को तारने की इच्छा रखना, अन्धा आदमी ऊँचे पहाड़ के लंबे जंगल को पार करने के लिये अन्धे और लंगड़े को सहारा लेने के समान है।

विशेषार्थः–एक व्यक्ति खुद अन्धा है। वह ऊँचे पहाड़ के जंगल को पार करना चाहता है। मगर उस का रास्ता दिखाने वाला लंगड़ा ऐसे मनुष्य की सहायता से अन्धा जैसे जंगल को पार नहीं कर सकता वैसे ही छह अनायातनों से रहित व्यक्ति, अनायतन वालों से संसार के दुःखों को दूर करने की कोशिश

करना बेकार है। क्योंकि अनायतनवाला तो खुद बुरे मार्ग पर है। वह दूसरों को सन्मार्ग पर लगाकर कैसे दुःख दूर कर सकता है ? कदापि नहीं। सन्मार्ग पर रहने वाला ही दूसरों को सन्मार्ग पर लगा सकता है और दुख दूर कर सकता है। अन्य नहीं।

छः अनायतन -मिथ्या देव, मिथ्या शास्त्र, मिथ्या-गुरु, मिथ्या देव को पूजना, मिथ्या शास्त्र को पढ़ना, मिथ्या गुरु की सेवा और भक्ति करना।

[१००]

भले लोग बुरे लोगों की संगति से दूर रहते हैं

कट्रत्तै नट्रेन्ट्रु कोण्डु गुणमिन्ट्रिच्
सेट्र मुदला उडैयवरैत्-तेट्र
अरिन्दारे न्टेूत्तु मवर्गलै क्कण्डाल्
तुरन्देलुव त्तूय् काट्टिचयार्

भावार्थः–निप्रयोजन बुराई को भलाई समझने वाले क्रोध-मान-माया और लोभ से भरे अज्ञानी को मेधावी बताकर सराहने वाले जो अधम लोग होते हैं उन्हें देखकर सम्यग्दृष्टि लोग (सज्जन) उन अधर्मों से अलग हो जाते हैं।

विशेषार्थः–सज्जन और दुर्जनों का भेद समझने के लिये दो तरह का रास्ता है। पहला-सज्जन का काम यह हुआ करता है कि बुराई को बुराई और भलाई को भलाई कहना। दूसरा बुराई को भलाई और भलाई को बुराई बताना यह दुर्जन का

काम हुआ करता है। अलावा इसके सज्जन क्रोध आदि से भरे हुए दुराचारी को कभी भी सराहना नहीं करते। मगर दुर्जन दुराचारो को भला आदमी बना कर उसकी तारीफ करेगा और सज्जन को को उल्टा बतायेगा। इस तरह के दुर्जन एवं दुराचारी के काम को देख कर सज्जन व सम्यग्दृष्टि पुरुष उस धूर्त के साथ संपर्क नहीं रखते और अलग हो जाते हैं।

[१०१]

मांस त्याग से आदमी भला बनता है।

कोंट न्नुगरुं कोडुमैयै युल् निनैत्तु
अन्ट्रे ओलिय विडुवानेल्-एन्ट्रु
इडुक्क णेनकुण्डो इल्वाल्क्कैक्कुल्ले
पडुत्तानां तन्नै त्तावं

भावार्थः–जीवों को मार कर उसके शरीर के मांस को खाने की जो आदत है, वह बड़ी बुरी है। इस विषय को अच्छी अरह सोच-विचार कर जो व्यक्ति उस मांस को फौरन छोड़ देता है, उसे किसी तरह का नुकसान नहीं आता। वह भला आदमी, गृहस्थ होते हुए भी साधु के समान ऊँचा व्यक्ति समझा जाता है।

विशेषार्थः–हर एक जीव जीना ही चाहता है। कोई भी जीव मरना नहीं चाहता। अतः जीने की इच्छा रखने वाले जीवों को निर्दयता के साथ मार डालना महान् पाप है। और उसमें भी मारे गये जीवों के शरीर से निकलने वाले

भीभत्समय मांस को खाना बहुत ही घृणास्पद् है। फिर भी मनुष्य भयंकर सिंह आदि पशुवत् उस मांस को भी खा जाता है। मांस दुर्गन्धमय वस्तु है। उसे देखते ही लोग अलग हो जाते हैं। सप्त धातुमय शरीर से निकलने वाले मांस को मनुष्य आँखों से देखना भी नहीं चाहता। फिर उसे कैसे खाता है? यही आश्चर्य भरी बात मालूम होती है। अतः मनुष्य दयावान रहना चाहें तो उन्हें चाहिये कि अहिंसक रहने के साथ-साथ निराभिष भोजी भी रहना अत्यावश्यक है। तभी आदमी उत्तम आचरण वाला कहलायेगा।

[१०२]

विवेकहीन व्यक्ति मांस खाता है

तंपुण् कलुवि मरुन्दिड ुतांपिरदिन्
सेंवुण् वरुत्त वरै तिन्बरु-अन्दो;
नड ु निन्ट्र ुलक नयनिलां मान्दरु
वड ुवन्ट्रो सेय्युं वलक्कु

भावार्थः—मानव को यदि घाव लग जाय या फोड़ा होजाय तो उसे साफ कर दवाई लगाता है। और उस घाव तथा फोड़े को बड़ी सावधानी के साथ ठीक करता है। लेकिन दूसरे जीवों को मार कर उनके शरीर से निकलने वाला जो मांस है वह घाव एवं फोड़े के समान दुर्गन्धमय एवं घृणास्पद है। फिर भी ऐसे मांस को लोग पका कर खा लेते हैं। अहो, आश्चर्य, क्षमा भाव के साथ दुनियाँ की रीति-नीति को न जानने वाले लोगों से किये जाने वाला कार्य महान् निन्दास्वरूप है।

विशेष अर्थः—प्राणियों का शरीर सप्त धातुमय हैं। ऐसे अशुद्धरूप शरीरों से निकलने वाली सारी चीजें निन्दनीय हैं। जैसे—मल, मूत्र, रक्त, पीव और मांस आदि। मगर उन शरीरों से निकलने वाले मल, मूत्र, पीव आदि को मनुष्य नहीं खाता और उन्हें देखकर मुंह फेर लेता है। न जाने वह मांस तक को बड़ी चाव के साथ खा डालता है। उसे खाने में उसको हिचकिचाहट नहीं होती। और पूछने वालों को यों कह देता है कि प्राणियों का समूह मनुष्यों के लिये ही बनाया गया हैं। अतः उनके मांस को खाने में कोई दोष नहीं है। इस तरह अपलाप करने के साथ-साथ दयाहीन होकर मांस खाने का जो अत्याचार है वह सर्वथा निन्दनीय हैं। समझदार लोगों को चाहिये कि ऐसे पापात्मक मांस को हमेशा के लिये छोड़ दे! और दयावान एवं शुद्ध अहिंसक बनें रहें।

[१०३]

जीभ आदि अवयवों का महत्व

अरंकूरु नाबेन्ब नावु चेवियु
पुरकूट्रुक्केलाद एन्बर-पिरन्ट्रारत्तु
अट्रत्तै नोक्काद् कण्णेन्ब यार्माक्ट्टु
सेट्रत्तै त्तीर्न्ददां नेंजु

भावार्थः—मानवों के पांच इन्द्रिय और मन होते हैं। उनमें से सच्चे धर्म का उपदेश देने वाली जीभ ही सचमुच में जीभ है। चुगलखोरः की बातें न सुनने वाले कान ही वास्तव में कान हैं सुन्दर स्त्री के लावण्य को देखने वाली आंखें ही

यथार्थ में आँख है। अहित करने वालों पर भी द्वेष न रखने वाला मन ही सचमुच में मन है।

विशेषार्थः-पांचों इन्द्रिय और मन सांसारिक जीवों को बुरे रास्ते पर खींच कर ले जाने वाले हैं। बहुत करके उनका उपयोग दुरुपयोग में ही हुआ करता है। अतः मानव, इन्द्रिय और मन के दास होकर पतित हो जाते हैं। जो व्यक्ति उन इन्द्रियों के दास न होकर उन्हें अपना दास बना लेता है, वही वीर कहलाता है। वह वीर व्यक्ति ऐसे बुरे इन्द्रियों को भी सन्मार्ग में लगाकर उनसे फायदा उठा लेता है। और वह अपने मन को भी कन्ट्रोल कर सत्कार्य में लगाने से उसे इन्द्रिय और मन अपने स्वाधीन हो जाते हैं। उसका उपयोग दुरुपयोग से हटकर सहयोग में लग जाने से उसकी आत्मा सांसारिक मोह-माया जाल से छूट कर अजर-अमर पद को प्राप्त कर लेती है। यही इन्द्रियों को सदुपयोग में लगाने से होने वाला सर्वोत्तम फल है। अतः लोगों को चाहिये कि इन्द्रिय और मन को संयमित बनावें और उनसे होने वाले श्रेष्ठ फल को प्राप्त करें।

[१०४]

पर स्त्री लंपटत्व आदि से सदाचार नहीं होता

पेण्विलैवाक्किल्लै पेरुन्तूय्मै तेणातून्
उण् विलैवाक्किल्लै उयिरोंबल् एप्पोलुदुं

मण् विलेवाक्किल्लै मरमिन्यै माणादु
तम् विलेवाक्किल्लै तवं

भावार्थः-पर स्त्री पर इच्छा रखने वाला व्यक्ति सदाचारी नहीं बन सकता। दया विहीन होकर मांसाहार पर आशा रखने वाले को जीव रक्षा करने की योग्यता नहीं होती। हमेशा दूसरे देश को हड़पने की इच्छुक व्यक्ति के पास धर्म नहीं रहता। बुरे कामों से भी आत्महित चाहने वाला व्यक्ति तप का आराधक नहीं बन सकता है।

विशेषार्थः-यदि कोई व्यक्ति सदाचार के साथ रहना चाहता है तो, उसे परस्त्री लपटत्व की आशा भी नहीं होनी चाहिये। रावण ऊँचा व्यक्ति था, मगर परस्त्री जो सीता देवी थी उस पर आसक्त हो गया था। इसी कारण से वह आज तक अधम व्यक्ति माना जाता है। मनुष्य के पास चाहे लाखों गुण हो, परन्तु जहाँ सदाचार का शिखर मूल ब्रह्मचर्य का अभाव है तो वहाँ उत्तमपने के बदले अधमपना स्वतः आ ही जाता है। अतः हमें समझना यह है कि सदाचार में ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा है।

दूसरी बात यह है कि दयावान ही जीव रक्षा कर सकता है। निर्दयी कभी भी जीव रक्षा नहीं कर सकता है। उसे जीव रक्षा करने की समझ भी दिमाग में नहीं बैठ सकती। अतः हमें समझना यह है कि दयाविहीन व्यक्ति कभी भी जीव रक्षा का अधिकारी नहीं हो सकता।

जो राजा धर्मात्मा होता है, वह निष्कारण से दूसरों पर चढ़ाई नहीं करता। उसे राज्य बढ़ाने की लालसा नहीं होती। मिली हुई भोग सम्पत्ति को केवल कर्माधीन समझता है। जहाँ लालसा का जोर है, वहाँ धर्म हट जाता है। अतः किसी को धर्मात्मा बन कर रहना है तो लालसावान नहीं होना चाहिये।

जो व्यक्ति सर्वसग परित्याग से तप करने लगता है उसे बुरे काम करने की जरूरत नहीं पड़तो। क्योंकि वहाँ पर ममता का अभाव रहता है। ममतावान ही बुरा काम कर डालता है। और वह अपने बुरे पने को छिपा कर अपने को महान व्यक्ति बताते हुए ढिंढोरा पीटता है। क्योंकि उसका दिल साफ नहीं है। ऐसा व्यक्ति तप क्या करेगा? और उससे आत्महित क्या किया जा सकता है? कुछ भी नहीं। अतः किसी को आत्महित करना है तो निर्ममत्व होकर करना बहुत जरुरी है। तभी फायदा मिल सकता है।

[१०५]

अच्छे बुरे का स्वरूप

कल्लान् कडै सिदैयुं कामुक न्कण् काणान्
पुल्ला न्पोर, ल्पेरवे पोय्च्चाकुं-नल्लान्
इडुक्कणुं इन्बमुं एय्दिय क्कण्णुं
नडुक्कमुं नन्मकिलवु मिल्

भावार्थः—अपढ़ व्यक्ति का अधमता के कारण नाश होगा।

कामी अन्धा रहेगा। नीच व्यक्ति के पास यदि धन की प्राप्ति हो जाय तो वह अपने को भूल कर चलेगा। परिज्ञानी मनुष्य आपत्ति में दुखित एव सपत्ति में सन्तुष्ट न हो कर समता भाव से रहेगा।

विशेषार्थः–अनपढ़ एवं मूर्ख जो व्यक्ति है वह अपनी अज्ञानता के कारण दुष्कृतत्यों का अवलबन कर विनाश को प्राप्त करेगा। दूसरा जो नीच व्यक्ति है, उसे यदि धन की प्राप्ति हो जाय तो वह धन के घमण्ड से अपनी स्थिति को भूल कर अकड़ता हुआ चलेगा। जो विवेकवान व्यक्ति है वह दुख में विचलित नहीं होगा और सुख में प्रफुल्लित भी नहीं होगा। वह बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा समझेगा कि जो सुख-दुःख हो रहा है, यह सब कर्माधीन है। यदि शुभ कर्म का उदय रहेगा तो सुख मिलेगा। दुःख में हाय'हाय करने और सुख में खुशी मनाने की क्या जरुरत है? इस तरह ऊहापोह के साथ विचार करके शमता भाव को धारण करता हुआ वह भला व्यक्ति सन्मार्ग पर चलेगा।

[१०६]

निर्दोषरूप गृहस्थाश्रम का लक्षण

दानत्तिन्मिक्क दरुमयुं तक्काक्कुं
ञानत्तिन्मिक्क उसात्तुणैयुं-मानं
अलिया ओलुकत्ति न्मिक्कदूउ मिल्लै
पलियामल् वालुन्तिरं

भावार्थ :–जो उत्तम पात्र हैं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के सिवाय ऊँचा कोई धर्म नहीं है। जो सत्पात्र हैं उनके सम्यग्ज्ञान के सिवाय अन्य सहायक ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। अपने गौरव मात्रा से च्युत न होने वाले चारित्र से बढ़ कर ऊँची और कोई वस्तु नहीं हो सकती।

विशेषार्थ :–धर्म कई तरह के होते हैं। उनमें उत्तम पात्र को आहार देना, सेवा-शुश्रूषा करना आदि सब से ऊँचा धर्म माना जाता है। क्योंकि जो उत्तम पात्र हैं वे धर्म के रक्षक हैं। यदि उत्तम पात्र की रक्षा की जाय तो धर्म की रक्षा अपने आप हो जाती है। अतः उत्तम पात्र जो मुनिराज हैं उनकी रक्षा, सेवा, शुश्रूषा आदि करना ही सबसे ऊँचा धर्म माना जायेगा।

सत्पात्र स्वरूप महान लोग सम्यग्ज्ञानधारी होते हैं। ऐसे महान सम्यग्ज्ञानी को सहायक ज्ञान की जरूरत नहीं पड़ती। सम्यग्ज्ञानी विशिष्ट गुणवान होते हैं। वे परिशुद्ध मार्ग पर ही चलते हैं। अतः उन्हें समझाने की अथवा ठीक रास्ते पर लाने की कोई जरूरत नहीं है।

चारित्र ही आत्मा को पवित्र बनाता हैं। ऐसे आत्म हितात्मक एवं अहिंसामय सच्चारित्र के सिवाय आत्मा को हित करने वाली चीज है ही नहीं। अतः आत्मा को हित पहुँचाने वाले को चाहिए कि सच्चारित्र को अपना कर नित्यानन्दमय शास्वत सुख को पा लेना है।

इस पद्य में तीन बातों की आवश्यकता बतलाई गई है।

एक उत्तम पात्र की सेवा, दूसरा सम्यग्ज्ञानी के ज्ञान का माहात्म्य, तीसरा सच्चारित्र का प्रभाव। ये तीनों महत्वपूर्ण हैं। इससे इस पद्य का आशय यों कहा जा सकता है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र इन तीनों का ही वर्णन किया गया है।

[१०७]

सर्वोत्कृष्ट तीन गुण

तूयवाय् च्वोल्लडल् वन्मैयुं तुन्वंगल्
आय पोलुदाद्रु आट्रलुं-काय्विडत्तु
वेट्रुमै कोण्डाडा मेय्मैयु मिमूट्रं
साट्रु गाल् सालत्तालै

भावार्थ :-निर्दोष वक्तृत्व, आपत्ति के समय में भी सहनशीलता, अपने को निन्दा करने वाले के ऊपर भी प्रेमभाव ये तीनों गुण सबसे ऊँचे हैं।

विशेषार्थ :-प्रत्येक व्यक्ति का वचन तभी प्रामाण्य माना जायगा, जब वह निर्दोष हो। अपना जैन सिद्धांत भी यही बतलाता है कि 'वक्तृ प्रामाण्यात् वचन प्रामाण्यं' अर्थात् जहाँ वक्ता को प्रामाण्यता हो, वहीं वचन का भी प्रामाण्यपना है। इस आशय के अनुसार देखा जाय तो 'निर्दोष वचन' दोष रहित आदमी के मुंह से ही निकल सकता है। अन्य के नहीं। यह तो वक्ता का एक असाधारण गुण है।

आदमी को थोड़ा सा संकट आ जाय तो वह हाय-हाय मचाकर ऊब जाता है। यह तो कमजोर आदमी का लक्षण है। चाहें जितना भी भयकर उपद्रव आ जाय, तो भी निश्चलता के साथ-साथ सहन करने वाला व्यक्ति ही महान कहलाता है। न कि डरपोक। यह सहनशीलता भी आदमी का एक विशिष्ट लक्षण है।

प्रत्येक व्यक्ति अपनी तारीफ चाहता है। तारीफ को न चाहने वाले दुनिया में विरले ही होते हैं। कुछ तो ऐसे तरसता है कि क्या कोई व्यक्ति अपनी तारीफ की दो बातें कहेगा? मगर उलटा उसे कोई गाली देने लगे तो उसका मुँह सूख जाता है। त्यागी भी तारीफ के भूखे हैं। ऐसी हालत में कोई अतिशय व्यक्ति, गाली देने वाले पर भी क्षमा भाव के साथ प्रेमभाव दिखाता है तो वह दुनियां में अनुपम व्यक्ति माना जायगा। यह विशिष्ट गुण महनीय व्यक्ति को ही हो सकते हैं।

ये तीनों गुण भगवान तीर्थंकर अथवा महामुनियों को ही हो सकते हैं। अन्य के नहीं। अतः यह संकेत उन्हीं को ध्यान में रख कर किया गया है।

[१०८]

सांसारिक गृहस्थी के लायक तीन गुण :-

वेंमैयुडैय तडिसिल् विलुप्पोरुद्कण्
सेम्मैयुडैयत्तां चेवकं-तम्मैप्

पिरकंरुदि वालवदां वालक्कै इंमून्ट्रं,
उरवरुव दोर्ववदा ओप्पुं

भावार्थ :-गरम-गरम खाना ही मजेदार खाना है। खूब कमाई हो और वह नीति सहित हो ऐसा जो धँधा है, वहीं उत्तम उद्योग है। अत्यधिक दातृत्व के कारण अन्य लोग हमेशा याद करें, इस तरह की गृहस्थी ही सचमुच में गृहस्थी कहलायेगी। इन तीनों को प्राप्त करने के लिये विचार विनिमयता के साथ जो कारवाई की जाती है, वही बुद्धिमता का कार्य माना जायेगा।

विशेषार्थ :-मनुष्य खाना खाकर ही जिन्दा रहता है। वह खाना तीन तरह का होता है। पहला खाना स्वादिष्ट एवं गरम-गरम हो तथा अपनी प्रिय पत्नी के हाथ से प्रेम के साथ खिलाया जाता हो, वहीं बढ़िया भोजन कहलाता है। दूसरा स्वादिष्ट आदि मौजूद है, परन्तु नौकर के हाथ से बिना प्रेम के जो खिलाया जाता है वह मध्यम कहलाता है। तीसरा जैसे-तैसे भी हो पेट भर लेना, वह जघन्य भोजन कहलाता है। इस इस तरह भोजन तीन तरह के होते हैं।

अपनी जीविका चलाने के लिए हर व्यक्ति कुछ न कुछ उद्योग करता ही है। बिना उद्योग के कोई भी अपनी जीविका नहीं चला सकता। मगर जीविका के साधन भूत वह धन्धा ऐसा हो, जिसमें अनीति की गन्ध भी न रहे। यहां पर आशाधर सूरि का वचनामृत याद करने लायक है। वह यह हैं कि "न्यायोपात धनो"। इस नीति के अनुसार धन कमाना न्याय संगत होना जरूरी है। अन्याय की कमाई ज्यादा दिन नहीं

टिक सकती। वह सम्पत्ति ज्यादा से ज्यादा ग्यारह वर्ष रह सकती है। फिर समूल नष्ट हो जायगी :-कहा भी है-अन्यायोपार्जित वित्तं दस वर्षाणि तिष्ठति प्राप्तेत्येकादशे वर्षे समूलंच विनश्यति'। अतः हर व्यक्ति को चाहिये कि नीति के साथ कमाकर सद् गृहस्थी चलावें।

पैदा हुआ मनुष्य कभी न कभी मरेगा ही। कोई भी अमर नहीं रह सकता। इसलिये आदमी को समझना यह है कि जो खाना खुद खाया जाता है, वह बेकार है। बस वहीं खाना दूसरों को खिलाया जाय तो वह पुण्य देता हैं। यदि उस खाने को उत्तम पात्र के लिये दिया जाय तो उसमें असीम पुण्य की की प्राप्ति होती है। हर एक मनुष्य का स्वभाव दातृत्व से भरा हुआ होना चाहिये। तभी दूसरा उसे याद कर सकता है। नहीं तो वह पशुवत् समझा जायगा। अतः मनुष्य को चाहिये कि अपने जीवन को दातृत्व के द्वारा उज्जवल बनावें, जिस से वह कभी न कभी अजर-अमर होकर नित्यानन्द सुख को प्राप्त कर सकता है।

[१०६]

बुराई को अच्छाई के द्वारा जीतो :-

ओरुप्पारै यानोरुप्पन् तीयाक्कुं तीयेन्
वेरुप्पाक्कुं नान्मडगे एन्व ओरुत्तियेल्
आर्वं मयक्कं क्रोध इवै मून्ट्रुं
ऊर्पगै निण्कण् ओरु

भावार्थ :–रे मन मुख की जो बुराई करता है तो उसके बदले मैं उसकी बुराई करूंगा, अन्यायी को अन्यायी बनूगा । जुगुप्सा करने वाले को चौगुणा जुगुप्सक बनाऊँगा। इस तरह मुझे दुनियां समझती है । मगर रे मन, तू इस तरीके से दूसरे को डूबाने जाओगे तो अहम् भाव, मूर्खता क्रोध आदि ये तीनों तेरे ऊपर सवार हो जायेंगे और तुम्हें विरोधी बना देंगे । इसलिये तू उन तीनों को अपने पास आने मत दो ।

विशेषार्थ :–आदमी के अच्छे-बुरे बनने का कारण मन ही है । ऐसा समझना चाहिये कि जो व्यक्ति मन को वशीभूत कर लिया है, उसने दुनियां में सबको अपने अधीन कर लिया है । बुराई के बदले बुराई, अन्याय के बदले अन्याय आदि करने का जो भाव होता है, उस का कारण क्रोध, मान, माया और लोभ ही है । अतः इन कषायों के अधीन होकर बुराई के बदले बुराई करने मत दौड़ो । कोई व्यक्ति एक गाल में थप्पड़ लगाता है तो उसे दूसरा गाल दिखा दिया जाय तो वह नम्र होकर शरणागत हो जाता है । यदि थप्पड़ के बदले थप्पड़ दोगे तो उसके बराबर तुम भी मूर्ख बन जाओगे । अतः हर व्यक्ति को चाहिये कि बुराई के बदले अच्छाई करके ऊँचा मानव बनना जरूरी है ।

[११०]

कुलं कूड़े में-दौलत दुनियां में :–

कुलत्तु प्पिरन्दा र्वनप्पुरैयार् कट्रार्
निनैक्कुं गाल निन्ट्रु लिये माय्वर् विनैप्पयन्कोल्

कल्लार् कुलमिल्ला पोल्लार् तरुकट्पं
इल्लार्पिन् सेन्ट्रनिलै

भावार्थ :–जों ऊंचे कुल वाले हैं, वे रूपवान, शास्त्र-पारंगत आदि गुणों से युक्त होने पर भी अपनी मान मर्यादा को छोड़कर गिरी हुई हालत में रहने का कारण, सोचने लगे तो ऐसा लगता है कि वे उसी समय मर जावें तो अच्छा है। क्योंकि अनपढ़े, नीच कुल वाले, दुष्ट, बुरे काम करने में जो निडर जो धनाढ्य हैं, उन के अधीन में रहकर अपनी आजीविका चलाने की जो मुसीबत हो रही है, उसे वे सज्जन, अपने पाप कर्म का ही फल समझते हैं।

विशेषार्थ :–सरस्वती और लक्ष्मी सपत्नी होती है। वे दोनों ज्यादातर एक जगह नहीं रहती। कुलीन एवं विद्वानों के पास धन संपत्ती नहीं रहती। अपढ़, अधम रंक नीच के पास ही लक्ष्मी निवास करती है। सरस्वती के वरद एवं कुलीन होने पर भी धन अभाव के कारण, अधम जो धनाढय हैं उनके अधीन रहकर अपनी आजीविका चलानी पड़ती है। वह बहुत ही बुरी बात है। क्या करे, ये सब, अपने पाप कर्म का फल ही समझना चाहिये।

[१११]

महिला के गाने में दुनियाँ मर मिटेगी :–

वेट्टवाय् क्केट्पर वैरैन्दोडि आलत्तार्
केट्टे किक्कियै प्पाडुंगाल्–कोट्टिल्ला

ओदुमिन् ओदि अडगुमिन् एन्नुंचोल्
कूत्तर्कुं क्कूति रनैत्तु

भावार्थ :–कोई बदसूरत औरत भी गाने लगे तो सारी दुनियाँ दौड़कर चाव से सुनने लगेगी। पूर्व अपर विरोध से अभाव जो धर्मशास्त्र हैं, उन्हें अवश्य पढ़िये और उसके अनुसार चलिये; इस तरह का जो सत्य वचन है उसे यदि महान लोग भी कहें तो वह, लोगो को ठँड के कारण सिकुड़ने वाले शरीर पर और ज्यादा ठँड हवा लगने के समान अप्रिय लगेगा।

विशेषार्थ :–लोगों को संगीत प्रिय लगता है। यदि उस में भी कोई औरत बदसूरत भी हो, वह गाने लगे तो लोग दौड़ कर उसे सुनेंगे। लेकिन सच्चे महात्माओ से आत्मा को हित पहुंचाने वाले धर्म शास्त्र का उपदेश दिया जाय तो उसे नहीं सुनेंगे। जैसे ठंड से ठिठुरने वाले लोगों को और भी जोर का ठंडापन अप्रिय लगती है। वैसे ही उसे घृणा करेंगे। बुरे कार्य में मन लग जाना और अच्छे कार्य में मन हट जाना यह तो पंचम काल का दोष है।

[११२]

खुराक बन्द हो जाय तो आत्म कार्य भी बन्द हो जायगा।

इरैयिरै यिन्सन्दि त्तेन्पोडू न्सार्त्ति
मुरैयिन्नरंबेंगुं यात्तु–निरैय
अवा प्येय्द पण्डियै अगिन्ट्र पागन्
पुक्काचुरुक्किल् पूट्टाविडुं

भावार्थ :– शरीर के अवयवों की सँन्धी को आपस में मिलावें। हड्डी के उपर चमडे लगाकर उसे नब्ज के जरिये सब्र जगह मजबूती से बाँधें, इस तरह के शरीर रूपी गाड़ी पर आशा रूपो माल को खूब भरे। ऐसे इस गाड़ी को चलाने वाला जो जीव रूपी गाड़ीवान है, उसको यदि भोजन देना बंद कर दें तो, वह उस गाड़ी चलाने के काम को छोड़कर चला जायगा।

विशेषार्थ :–मनुष्य के शरीर में कई तरह के अवयव हैं। और कई तरह की हड्डियाँ भी हैं। हड्डियों के ऊपर मांस लगा कर नस के द्वारा खूब बांधा गया हैं। उसकी बुरी अवस्था को छिपाने के लिये ऊपर से पतला सा चमड़ा लगा हुआ है। तभी वह शरीर सुन्दर सा लगता है। इस तरह के शरीर रूपी गाडी पर आशा-पाशरूपी माल खूब भर दिया जाता है। फिर उस गाड़ी को आत्मारूपी गाडीवान चलाता है। यदि उसे खाना देना बन्द कर दें तो वह गाड़ी चलाना छोड़ देगा। खाना शरीर के साथ संबन्ध रखनेवाला होने पर भी उसके बिना मनुष्य (जीव) जिन्दा नहीं रह सकता। अतः जीव जीवित रहने के लिये भी खाने को बड़ी जरुरत है।

[११३]

शरीर का अनित्यपना:–

आसैयुं पासमुं अन्बुंअगत्ताडक्कि
पूसिप्पोदिन्द पुलालुडम्बु-ऊसल्
कयिट्रट्रार्पोल क्किडक्कुमे अट्रत्
तेयिट्रु ट्रिडै मुरिन्दक्काल्

भावार्थ :–संपत्ति पर आशा करना, बन्धुजनों के प्रति प्रेम भाव रखना, अपनी पत्नी के ऊपर मोह भाव होना आदि इन सब को भरकर (व्यवहार से) रहने वाला यह शरीर चमडे से बन्धा हुआ होने के साथ-साथ मांस आदि बदबू के कारण अशुद्ध एवं घृणास्पद है। ऐसा दुर्गन्धमय शरीर यमराज के दांतों में फंसकर चबा लिया जाता है। तब वह टूटे हुए रस्सी वाले झूले के समान बेकार पड़ा रहेगा।

विशेषार्थ :–शरीर के साथ आत्मा का जब तक संबन्ध रहता है तब तक आत्मा के गुण शरीर पर आरोप किये जाते हैं। जैसे–धन संपत्ति पर आशा, बन्धुजनों के प्रति प्रेम, पत्नी पर मोह ये सब राग-भाव आत्मा के होने पर भी कथचित् शरीर का भी समझा जाता हैं। यह शरीर मांस आदि सप्त धातुमय हैं। इस की अशुद्धि को छिपाने के लिये यह चमडे से ढका हुआ है। फिर भी इसके मांस आदि से बदबू आती रहती है। ऐसे दुर्गन्धमय तथा घृणास्पद शरीर पर मनुष्य अज्ञानवश राग करता है। जब यमराज आत्मा को खींच ले जाता है, तब यह शरीर टूटे हुए रस्सी वाले झूले के समान बेकार पड़ा रहेगा फिर इसका कोई उपयोग नहीं है।

[११४]

सांसारिक सुख की चंचलता

मरैत्तोरुव न्वालुमिमायमा वाल्कै
अरिन्दोरुव न्वालुमेल् इल्लै सेरिन्दोरुवन्

ऊंट्र इरन्दुरुदि कोल्लाक्काल् ओगोडिदे
कट्टं इडैकोडुत्त नाल्

भावार्थ :–कोई व्यक्ति आत्मा के सच्चे स्वरूप को भूल-कर झूठे सांसारिक सुख पर रमता रहेगा तो वह यमराज की रस्सी पर फसते समय बहुत दुःख पायेगा। अतः शरीर के साथ आत्मा रहते समय में ही मोह भाव छोड़ कर सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यावश्यक है।

विशेषार्थ :–आत्मा कभी न कभी इस शरीर को छोड़कर चली जायगी। जब आत्मा चली जायगी। तो तब इस शरीर का भी अवश्यमेव अन्त हो जायगा। शरीर और आत्मा से सम्बन्ध रखनेवाली धन-धान्य, पुत्र-मित्र कलत्रादि सारी सांसारिक संपत्तियां अपने आप विलीन हो जायेंगी। ऐसी अवस्था में न शरीर का कुछ महत्व रहेगा और न आत्मा का अतः बुद्धिमानों को चाहिये विनाशमय सांसारिक सुख पर आशा-पाश को छोड़कर आत्मा के यथार्थ स्वरूप को पहचान लेना अत्यावश्यक है।

[११५]

यह लोक अविश्वसनीय माया लोक है

तोट्रमुं संपिरदं तुप्पुरकुं संपिरतं
कट्रमुं कोल्लुंगाल् मापरत–तोट्र
कडैप्पट्ट वारिन्दु कट्रिन्दा तुंज्जार्
पडैप्पट्ट नायकनै पोन्ड्रु

भावार्थ :–यहाँ जन्म लेना भी माया है। जन्म लेने पर भी यह जीव संसार के वस्तुओं को भोगना भी माया है। संसार के जीवों को यमराज खींच ले जाना भी माया है। अतः धर्मशास्त्र के परिज्ञानी लोग जन्म-मरण की इस भयंकर हालत को समझ कर, रणभूमि पर डटे हुए सेनापति के समान, थकावट के बिना जन्म परंपरा को काटने के लिये सदा-सर्वदा प्रयत्न करते रहते हैं।

विशेषार्थ :–संसार में जन्म-जरा-मरण एक भयंकर चक्र है। सांसारिक जीव इस चक्र में हमेशा फिरते हुए दुःख भोगते रहते हैं। कभी भी इन्हें सुख-शान्ति नहीं मिलती। मगर यह जीव झूठे संसार को सच्चा मान कर उसी में रम जाता है। अज्ञानी जीव जन्म लेना, भोग वस्तुओं को भोगना इसी में बड़ा आनन्द मानता है। उसे मालुम नहीं पड़ता कि इसमें कितनी आपत्तियां हैं। जब यमराज के पास जाने का समय आ जाता है तब रो-रोकर मरता है। इस सांसारिक भोग में लव-लेश भी सुख नहीं है। यह तो सुखाभास है। अतः यथार्थ स्वरूप को जानने वाले महान लोग इस मायामयी सुखाभास को काटकर निश्चय एवं यथार्थ सुख को प्राप्त करने में उद्धत रहते हैं।

[११६]

बहुत से लोग कुछ दिन के सांसारिक सुख के बारे में नहीं जानते

तेरिविल् इलमैयुं तीप्पिणियुं मूप्पुं
पिरिवुं तुयिलुं उरीइय्–परुवंत्तु

पत्तोट्टु नालै प्पयनिल्ला वालकैक्कु
वित्तुक्कु ट्रुण्वार पलर्

भावार्थ :–उत्पत्ति के कारण भूत बीज को खा जाने वाले किसान के समान वस्तुओं के गुणों से अनभिज्ञ एवं परिपक्वता से सुदूर बाल्यावस्था, भयंकर रोग, वृद्धावस्था, बन्धुजनों का वियोग, मरण इनसे होने वाले महान दुःख एवं कष्टों को पाकर भी मनुष्य अत्यल्प सुख के वास्ते महान पुण्य फल को देने वाले धर्म को भूल जाता है।

विशेषार्थ :–किसान अगले साल की पैदाइश के लिये धान के बीज को रखता है। यदि कोई किसान उसी बीज को भी खा जायगा तो उससे अगलें साल की उत्पत्ति नहीं हो सकती। वैसे ही बहुत से लोग तात्कालिक अल्प सुख के वास्ते निरन्तर सुख को देनेवाले धर्म को भूल जाते हैं। वह अल्प सुख भी बाल्यावस्था, भयंकर रोग, जरावस्था, मरण इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग आदि से भरा हुआ है। उसमें सुख के बदले दुःख की परंपरा चलती रहेगी। फिर भी अज्ञानी मनुष्य ऐसे सुखाभास की इच्छा करता हुआ दौड़ रहा है। यही विनोद है।

[११७]

मूर्ख मनुष्य का मोह

पिरप्पिरप्पु मूप्पुप्पिणी येट्रिन्नान्गुं
मरप्प मंदियिला मान्टर्-कुरैक्कूडाच्

सेलबं किलै पोरुल् काम मेन्ट्रिन्नांगुं
पोल्लाप् पोरियरुक्क प्पट्टु

भावार्थ :-मूर्ख लोग जन्म, जरा, मरण और रोग इन चारों के बारे में स्मरण किये बिना चलते रहते हैं इसका खास कारण यह है कि अनगिनत संपत्ति, बान्धव, परिपूर्ण संतान और प्यारी पत्नी इन चारों के मद से आदमी वास्तविक स्थिति पर ध्यान नहीं देता है। मगर उसको मालूम होना चाहिए कि संपत्ति आदि चारों वैभव यदि पापकर्म का उदय आ जाय तो एक दम नष्ट हो जायेगा। तब आदमी के पास कुछ भी नहीं रहेगा।

विशेषार्थ :-यदि मनुष्य के पास अत्यधिक संपत्ति आ जाय तो वह अन्धा हो जाता है। उसे सामने वाले भी नहीं दीखते। धन मद के कारण धर्म कर्मादि कार्यों को तुच्छ समझने लगता है। यदि धन के साथ-साथ हर समय सहायता करने वाले बन्धु-बान्धव, नौकर-चाकर, सभी प्रकार से परिपूर्ण संतान तथा भोग के योग्य प्यारी पत्नी आदि का भी संभव हो जाय तो उस व्यक्ति का मद मस्तिष्क तक चढ़ जाता है। तब सारी दुनियां उसे तुच्छ मालुम होती है। उस मूर्ख अंन्धे को यह बात मालूम नहीं है कि उसके पीछे जन्म, जरा, मरण और रोग आदि पड़े हुए हैं। इन सब आपत्तियों से उसे कोई बचा नहीं सकता। अतः मनुष्य को चाहिए कि धन आदि मद से सांसारिक परिस्थिति को भूलना नहीं है।

[११८]

अनुपम तप शरीर को सुधार देता है :-

मूप्पु प्पिणिये तलैप्पिरिवु नलकुरवु
साक्काडुमेल्लां सलमिलवाय् नोक्कीर्
परन्दुक्किरैयामिव् याक्कैये प्पेट्राल्
मरुन्दु मरप्पदो माण्बु

भावार्थ :-लोग जरा, मरण, रोग पुत्र कलत्र का वियोग दरिद्रता आदि के बारे में और उन के कारणों के बारे में विचार नहीं करते। यह काय तो आखिर पशु-पक्षियों का आहार बनता है। यदि ऐसा शरीर विनाश होता है तो उसे रोकने वाले औषधिरूप तप को भूलना क्या उचित है ? नहीं।

विशेषार्थ :-मानव को पुत्र-मित्र-कलत्र और धन धान्यादि वैभव पुण्य कर्म के उदय से ही मिलते हैं। यदि वह कर्म नष्ट हो जायगा। तो सब के सब सर्वनाश हो जाते हैं। ऐसे पुत्र-मित्र कलत्रादि कभी न कभी वियोग होने वाले ही हैं। इस तरह विचार कर उनके वियोग होने के पहले उनके ऊपर के मोह को हटाकर यदि हम उत्तम तप का आचरण करेंगे तो नश्वर शरीर का अभाव होने के साथ-साथ अविनश्वर सुख की प्राप्ति हो जायगी। अतः हमें अविनश्वर अनन्त सुख की प्राप्ति करनी है तो उत्तम तप की आराधना करना अत्यन्त आवश्यक है।

(११६)

मिथ्याज्ञानी असीम दुःख पाता है :–

नीक्करुपोय् मूप्पूत्तले प्पिरिवुनल्कुरवु
साक्काडेन्ट्रेन्दु कालिरुलक्कप् पोक्करिय
तुन्बत्तुल् तुन्बं अल्लप तुंरन्देय्दुं
इन्ब त्तियबरियादार्

भावार्थ :–सांसारिक वासना को छोड़ देने से जो आनन्द मिलता है उसके महत्व को अनजाने लोग, अशान्त, रोग;बुढापा पुत्र, कलत्र, वियोग, गरीबी, मृत्यु जैसे इन पांचों भयंकर हाथियों से होने वाले अपार दुःख को भोगेंगे।

विशेषार्थ :–कुटुंब वासना को छोड़ देने से मनुष्य दुःख से छुटकारा पाता है। जब आदमी को सांसारिक इच्छा ही छूट जाती है तो उसे किसी तरह का दुःख नहीं होता। अलावा इस के वह व्यक्ति आत्मान्नद से परिपूर्ण हो जाता है संसार के प्रपंच में फंसा हुआ व्यक्ति इन विशेष गुणों का अनुभव नहीं कर सकता। उसे बीमारी बुढ़ापा, इष्ट वियोग, गरीबी, मृत्यु आदि सतायेंगे। अतः इन दुःखों से छुटकारा पाना है तो सांसारिक वासना से मुक्त हो जाना जरूरी है। तभी मनुष्य संतुष्ट रह सकता है। अन्यथा नहीं।

[१२०]

मरना निश्चित है त्यागना जरुरी है :-

एक्कालुं सादल् ओरुतलैये यानुनक्कुप्
पुक्किल् निरैयत्तारुगिलेन्-मिक्क
अखिनै वाल्त्ति अडव त्तुणैयात्
तुरत्तन्मे सरि्दल् तलै

भावार्थ :-रे मन कभी न कभी मरना निश्चित है। मैं (आत्मा) तुम्हें नाश होने वाले शरीर को बार-बार नहीं दूंगा। अरहन्त परमात्मा को नमन् कर जंगल को ही सहायक समझ कर चले जाओ। और यति धर्म धारण कर श्रेष्ठ जीवन बिताओ।

विशेषार्थ :-मन के अन्दर अच्छे-बुरे को समझने की ताकत हैं, मगर वह दुष्ट मन बुरे के पीछे दौड़ता है। न कि अच्छे को देखने। रे मन, तुम्हें, सचमुच समझना यह हैं कि पैदा हुआ व्यक्ति कभी न कभी मरता ही है। वह अमर नहीं रहेगा। और समझना यह है कि बार-बार नाश होने वाले शरीर को पाने से क्या फायदा हैं ? कोई फायदा नहीं है। अत: रे मन, अच्छी तरह समझ लो कि सभी तरह से ऊंचे जो अरहन्त परमात्मा है, उन्हीं को नमस्कार करो। औरों को नहीं। यदि तुम्हें जन्म-मरण के दु:खों से छुटकारा पाना है तो सर्वसंग को परित्याग कर वन की शरण लो और कठिन तपस्या करके अविनाशी सुख का राजा बनो।

[१२१]

जीव समूह खिलाड़ी के समान घूमते हैं :-

अंगं अखाडि अंगे पडमरैन्(दु)
अंगे ओरुवण्णं कोडलाल् एन्ट्रु
अरंगाडु कूत्ताने पोलुं उयिर्दान्
सुलट्राडु तोट्रप्पिरप्पु

भावार्थ :-जीव समूह भव-भव में चक्कर लगाकर चारों गतियों में जन्म लेते फिरते हैं। एक भव में कुछ अन्य गति में जन्म लेकर वहां भी कोई रूप धारण करते हैं और मरते हैं। यही सांसारिक जीवों का परिभ्रमण नाटक है। जैसे-रंगमंच पर खिलाड़ी वेष बदल कर खेलता है, वैसे ही सांसारिक जीवों की हालत भी होती है।

विशेषार्थ :-संसार एक रंगमंच है। उस पर जीव समूह खिलाड़ी बन कर खेलते फिरते हैं। उन जीवों को नचाने वाला कर्म है। इस खेल को देखने वाले सिद्ध परमात्मा हैं। जैसे व्यवहार में रंगमंच, खेल और खिलाड़ी होते हैं। वैसे ही सांसारिक जीवों के खेल में भी है। अतः बुद्धिमान लोगों को चाहिये कि अब तक हम जो खेल, खेल चुके हैं बस, वे ही काफी हैं। आगे ऐसे खेल के पात्र न होने का जो उपाय है उसे अपनाने की जरूरत है।

[१२२]

बुरे लोगों की अपेक्षा जानवर अच्छे हैं

इक्काल त्तिव्बुडंबु सेल्लुं वगैयिनाल्
पोच्चावा प्पोट्रित्तां नोर्पारै-मेच्चादु

अलन्दुतं वाय्वन्द कूरुं अवरिन्
विलंगुकल् नल्ल मिक

भावार्थ :–यह शरीर हर समय नष्ट होने वाला है। ऐसे इस शरीर की हालत को जानकर कोई महाशय जागरूकता के साथ अपनी आत्मा की सुरक्षा के निमित्त तप धारण करने लगता है तो उसे तारीफ करना चाहिये। ऐसी महत्व की बात को छोड़कर कोई मनमानी से गाली देने लगता है तो उससे जानवर ही अच्छा है।

विशेषार्थ : मनुष्य का शरीर चिरस्थायी नहीं है। वह हर समय विनाश होने वाला है। कोई बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे इस शरीर की हालत को जानकर 'अविनश्वर पद प्राप्ति हेतु' तप धारण करने लगता है तो उसे तहे दिल से प्रशंसा करनी चाहिए। अलावा इसके कोई मनमानी गाली देने लगता है तो उस मूर्ख की अपेक्षा जानवर ही भला है। क्योंकि जिस व्यक्ति को ऊहापोह बुद्धि नहीं है उसे जानवर से भी गयाबीता जंगली आदमी समझने में क्या आपत्ति है ? कुछ भी नहीं हैं।

[१२३]

जन्म परंपरा की दुरवस्था देख पीछे हटो

एण्णर्करिय इडैयु रुडयदनैक्
कण्णिना र्कण्डुं करुदादे-पुण्णिन्मेल्
वीक्करुवि पाय इरुन्दट्राल् मट्रदन्कण्
तीक्करुमं चोर विडल्

भावार्थ :–यह शरीर स्मरण करने अशक्य दु खों का खजाना है। ऐसे इस शरीर की हालत को आंखों से देखने पर भी, उसकी परंपरा को अन्त करने के लिये आदमी प्रयत्न नहीं करता। बल्कि उलटे बुरे कार्य में खूब मन लगाकर करता रहता है। यह कार्य ऐसा मालूम पड़ता है कि घाव पर तलवार घुंसाता हो।

विशेषार्थ :–'संसारो दुःखमयः शरीरो रोगमयः' इस नीति के अनुसार संसार तो दुःखों का पारावार है। उसमें यह शरीर असंख्यात रोगों की खान है। ऐसे दुःखमय संसार में रोगमय शरीर को धारण करने वाला मनुष्य ऊब जाता है। फिर भी उसके दिल में यह भावना नहीं उठती कि इस शरीर परंपरा को खत्म कर देना है। उसके लिये जो कुछ प्रयत्न करना चाहिये उसे जल्दी से जल्दी करना है। ऐसी ऊँची भावना को तो छोड़ो। मगर आदमो इस भावना के विरुद्ध होकर असत्कार्य में दिल लगाकर जोर से करता है। मनुष्य का स्वभाव से बुरे कार्य में मन लग जाता है। अच्छे कार्य में मन हटता है। क्या करें ? यही उसकी विडंबना है। अतः सज्जनों को चाहिए कि संसार और शरोर की परंपरा का अन्त करने के लिये प्रयत्न करना बहुत जरूरी है।

[१२४]
शरीर की अधमता

नेडुन्दू गिरुकाला नीण्मुदुगु तण्डाक्
कोडगाल् विला वेंबु कोलि–उडंगियनर्

पुन्तोला लवेयंद् पुलाल् वाय्क् कुरंबैये
इन्बुरुव रेलैयवर्

भावार्थ :–शरीर के दोनों पैरों को खंभा बनाकर लंबे पीठ की हड्डी को ऊपर की लकड़ी बना कर, छाती के नीचे की हड्डियों को घर की छत बना कर, वह स्थिर रहने के लिये मांसों को खूब भर कर शरीर रूपी घर बनाया गया है। मांस-मज्जा आदि से भरे जुगुप्सामय शरीर पर सुन्दरता के लिये बिलकुल पतला-सा चमड़ा ढका हुआ है। मूर्ख लोग ऐसे घृणामय शरीर को देख-देख कर खुश होते हैं और उस पर लालायित भी हो जाते हैं।

विशेषार्थ :–आचार्य शरीर की दुरवस्था का खूब वर्णन करते हैं। यह शरीर घर जैसा बनाया हुआ है। शरीर के दोनों पैर ही खंभे हैं। पीठ की मजबूत हड्डी ऊपर की लकड़ी है। छाती के नीचे की हड्डियां छत हैं। उसकी स्थिरता के लिये रक्त, मांस-मज्जा आदि भरा हुआ है। घृणामय इस शरीर की दुरवस्था को लोग न देखें, इस कारण से शरीर के ऊपर एक पतलासा चमड़ा ढका हुआ है। उसी के कारण आदमी का शरीर सुन्दर दीखता है। यदि वह पतलासा चमड़ा न होता तो शरीर की हालत मनुष्यों से देखी नहीं जाती। फिर भी ऊपर की सुन्दरता को मनुष्य बार-बार देख कर खुश हो जाता है और वाह-वाह कह कर उस पर मोहित हो जाता है। अतः बुद्धिमानों को चाहिये कि ऐसे दुर्गन्धमय शरीर पर ममता छोड़ कर उसकी परंपरा को काटने का प्रयत्न करें।

[१२५]

शरीर का अशुद्धित्व

एन्बु कालाग इरुतोलुं वेयुला
ओन्बदु वायिलुं अट्ररात्–तुन्बक्
कुरबै युडैया कुंडिपोक्कु नोक्किक्
कवर्दुण्ण प्पोन्द कलुगु

भावार्थ :–हड्डियों को ही दो खंभा बनाकर, दोनों भुजाओं को ढका हुआ छत जैसा बनाये हुए इस शरीर के नौ द्वारों से हमेशा मल निकलता रहता है। और इस कारण से कई संकट आते हैं। ऐसे संकटमय शरीर से निकलने वाले रक्त-मांस आदि दुर्गन्ध वस्तुओं को देखकर गृद्ध आदि पक्षीगण खाने के लिये दौड़ आते हैं। इसकी दशा श्मशान में प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

विशेषार्थ :–आचार्य इस पद्य में भी शरीर की दुरवस्था का वर्णन करते हैं। यह शरीर हड्डियों से बनाये हुए खभों पर भुजाओं के सहारे छतसा बनाया हुआ एक विचित्र मकान है। इसमें नौ द्वार हैं। इन द्वारों से हमेशा मल निकलते रहते हैं। इस कारण से शरीर को बहुत दुःख होते हैं। पहला यह है कि बदबू आती रहती है। कभी-कभी यह मनुष्य से सहा नहीं जाता ऐसी बदबू को पसन्द करने वाली गृद्ध आदि पक्षियाँ इस शरीर को खाने के लिये दौड़ आती हैं और छीन कर ले जाती हैं। इस से पता लगता है कि अशुचिपूर्ण इस शरीर को पसन्द करने

वाली हैं तो, पक्षियां ही हैं न कि मनुष्य। फिर ऐसे घृणामय शरीर पर मानव क्यों मोहित होता है ? यही आश्चर्य करने की बात है।

[१२६]

शरीर के अशुचित्व को देख कर भी लोगों को अक्ल नहीं आती

ओरु पागन् ऊरुंगलिरैन्दुं निन्ट्र
इरुकाल् नेडुंकुरंबै वीलिन्–तरुकालाल्
पोत्तूंन्ट्र लागा प्पेरुन्तुन्बं कण्डालुं
ओत्तूंन्ट्रि निलला दुलगु

भावार्थ :–मनरूपी महावत से चलाने वाले पाँचों इद्रिय-रूपी हाथियों से युक्त यह शरीर, लंबे दो पैरों पर खड़ा हुआ है। यदि इसके पैर टूट जाय तो दूसरे पैरों से इसकी पूर्ति नहीं हो सकती। इस शरीर की ऐसी दुर्दशा को प्रत्यक्ष में देखने वाले मानव समूह, शरीर की अवस्था पर विचार नहीं करते। आश्चर्य है न ?

विशेषार्थ :–मनुष्य को उपद्रव देनेवाली पांचों इन्द्रियां ही हैं। इन इन्द्रियों को चलाने वाला मन है। मन जैसा कहता है वैसा ही इन्द्रियां करती हैं। वे इन्द्रियां मत्त हाथियों के समान हैं। उनको कन्ट्रोल करने वाला महावत के समान मन ही है। यदि वह मन बुरा होगा तो इन्द्रियों की चाल भी बुरी होगी। यदि अच्छा होगा तो अच्छी होगी। ऐसे मन और इन्द्रियों से युक्त शरीर दो पैरों पर खड़ा हुआ है। यदि वे पैर टूट जाय तो

दूसरे पैरों से इसका काम पूरा नहीं किया जा सकता। ऐसे इस शरीर की दुर्दशा को सामने देख कर भी मनुष्य यथार्थ विषय पर ध्यान नहीं देता। बल्कि शरीर के मोह-माया जाल में ही फँसा रहता है। देखिये, यह कैसा विनोद है ?

[१२७]

मानवों का कर्त्तव्य

नोत्तोलिन्द आरैन्दडक्कि प्पिन्निच्चयमे
वायत्तमैन्द नायिल्पेण् आनैयुं -कूत्तुर्कु
वालेरो डोसै विलैनिलं इव्वल्लार्
केला युडन्वरुव दिल्

भावार्थ :-वीरता से अपरिमित यश, धन से अत्यधिक सुख-भोग कामिनी से काम सेवा ये सब मरते समय साथ में नहीं आते। अतः हे मनुष्य, छः प्रकार के अविनयों को छोड़कर पचेंन्द्रियों को दमन करो। तथा सदाचार के मार्ग पर चलो। तब तुम्हें मोक्ष महल का द्वार खुल जायेगा। इसमें कोई शक नहीं है।

विशेषार्थ :-मनुष्य समझता है कि मैं अपनी वीरता के कारण सारी दुनियां को जीतकर अद्वितीय कीर्तिमान बन गया हूँ। मैं अपने जीवन में अपरिमित परिश्रम के कारण अनगिनत धन का स्वामी बना हुआ हूं। इससे मुझे सुख-भोग की सामग्री खूब मिल रही है। प्रिय ललना के साथ अविरल सुख भोगता हुआ आनन्द सागर में डूबता रहता हूं। इस तरह समझ कर

मानव उन्मत्तता से पागल बना रहता है। वास्तव में ये सब साथ में नहीं आते। वहीं के वहीं रह जाते हैं। अतः मनुष्य को चाहिए कि सम्यक्त्व के विरोधी अविनयादि दोषों को हटाकर सच्चे सम्यग्दृष्टि बनना है। और सन्मार्ग पर चल कर आत्म कल्याण करना है। यही मानव का परम कर्त्तव्य है।

[१२८]

जीवन काल थोड़ा है, उसमें बुढ़ापा, रोग आदि दुःख बहुत है

वाल्नालि बागं तुयिल् नीक्कि मट्रवट्रुल्
वीण्ना लिडमूंप्पु मेय्कोल्लुं-वाल् नालुल्
पन्नोय् कवट्र प्परिन्दु कुरैयेन्न
अन्नो अलित्तिव् उलगु

भावार्थ :-जीवन काल में, आधा समय तो सोने में निकल जाता है। और सुखानुभव के योग्य आधी आयु में दुःख के कारण भूत बुढ़ापा आ जाता। नींद और बुढ़ापा आ जाता है। नींद और बुढ़ापा इन दोनों कालों को निकाल कर, बाकी के एक चौथाई काल में कई संकट आकर घेर लेते हैं। फिर पछताने से क्या लाभ है? सोच लो। अहो, संसार सागर की हालत बहुत भयंकर है।

विशेषार्थ :-आजकल मनुष्यों की आयु सौ के हिसाब में परिमित है। उसमें आधा याने पचास साल तो नींद में चला जाता है। बाकी के आधे याने पचास साल में बाल्यावस्था एवं बुढ़ापे में आधा याने पच्चीस साल निकल जाता है। बाकी के

पच्चीस साल में तो आधि-व्याधि, इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग आदि दुःख आ घेरते हैं। हे जीव, ऐसे दुःखमय संसार में सुख कहाँ है ? सुख है ही नहीं। केवल भ्रम है।

[१२६]

दान और तप रहित जीवन बेकार है

उडंबुङ् किलैयुं पोरुलुं पिरवुं
तोडन्दुं पिन्सेल्लामै कण्डुं-अङ्गित्
तवत्तोडु दानं पुरियादु वाल्वार्
अवत्तं कलिक्किन्ट्र नाल्

भावार्थ :-शरीर, संपत्ति, बन्धुजन और घर आदि अपने साथ (जाते समय) नहीं आते। इसे प्रत्यक्ष में देखते हुए भी जो लोग अपने मन वचन काय को निश्चल बनाकर दान और तप नहीं करते हैं; ऐसे लोगों का जीवन (काल) बेकार चला जाता है।

विशेषार्थ :-संसार की सारी अवस्था सबको अच्छी तरह मालूम है। चिरकाल से सरक्षण किया हुआ शरीर, काफी प्रयत्न के साथ अर्जित की हुई धन-धान्यादि संपत्ति, अत्यधिक प्रिय पात्र पुत्र, मित्र, कलत्र एवं निजी घर आदि मरते समय अपने साथ-साथ नहीं आते। यह बात सभी लोगों का अच्छी तरह मालूम है। और सब लोग प्रत्यक्ष में देखते भी है। फिर भी मनुष्य के दिल में यह भावना नहीं उठती कि जो चीज अपने साथ नही आती, उसके पीछे क्यों बेकार मर मिटें। उसे

छोड़कर जो कुछ अपने साथ आने वाले हैं ऐसे दान और तप को क्यों न करें ? इस तरह की भावना जिसके दिल में नहीं आती, उसका सारा जीवन बेकार है। अतः हर व्यक्ति को चाहिए कि दान और तप आदि सत्कार्य करके स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति करें।

[१३०]

बे मतलब तारीफ मत करो

पोट्रिये पोट्रिये एन्रु पुदुच्चेलवं
तोट्रिया कंण्णेल्लां तोण्डेपोल-आट्रप्
पयिट्रिप् पयिट्रिप् पलवुरैप्पदु एल्लां
वयिट्र प्पेरुमान् पोरुट्टु

भावार्थ :-नये पैसे वालों के पास जाकर, अधीन व्यक्ति के समान होते हुए, उससे यों कहना है कि हे महानुभाव आप भले आदमी हैं; आप मेरी रक्षा करने योग्य हैं। इस तरह उसकी तारीफ की बातें सुनाकर अपात्र का गुणगान करना यह तो केवल पेट भरने मात्र कार्य माना जायेगा।

विशेषार्थ :-दुनियां में दो तरह के व्यक्ति होते हैं। एक सज्जन दूसरा दुर्जन। सज्जन यदि धनवान रहेगा तो उसे तारीफ करने की कोई जरूरत नहीं है। वह अपना कर्त्तव्य आप ही करेगा। दुर्जन यदि पैसे वाला हो जाय तो वह पैसे की ममता से अकड़ता हुआ चलेगा। ऐसे गुणहीन व्यक्ति के पास कोई व्यक्ति जाकर यदि अपनी कार्य सिद्धि करना चाहे तो उसे

इन्द्र-चन्द्रा आदि के नाम से गुणगान करना पड़ेगा। इस तरह अपात्रों का गुणगान केवल पेट भरने के लिये ही माना जायेगा। आजकल यही काम ज्यादातर हुआ करता है। इसका आशय यह है कि अपात्र का गुणगान अधर्म है।

[१३१]

शरीर मात्र की रक्षा से कोई फायदा नहा है

पुका उण्बार अल्लुण्णा पोंगुं तुणेक्कण्
तकविन्नं वन्दडैय क्कण्डुं-अवाविनेप्
पट्रच्चेय् तेन्नं पयमिन्ट्राल् नन्नंजे
ओट्रि उडंबोंबुदकुं

भावार्थ :-मेरे अच्छे मन सुनो ! जिस व्यक्ति ने सुबह खाया है, वह फिर शाम को खाये बिना भी मर सकता है। शरीर की स्थिति इस तरह अनित्य है। जिसने अपने जीवन काल में जो अच्छा बुरा किया है वही उसके साथ जायेगा। इस बात को लोग बड़े समझदार (सर्वज्ञ) के मुख से सुने हुए हैं। फिर भी लोग ध्यान नही देते। अतः इस बात को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि अनित्यमय शरीर की रक्षा करने में आशा रखने से कोई फायदा नहीं है।

विशेषार्थ :-आचार्य मन को संबोधन कर बोलते हैं कि हे मन, तुम्हें सबसे पहले जानना यह है कि जिसने सुबह खाया है, वह फिर से शाम को खायेगा, यह बात निश्चित नहीं है। याने इसके (काल) अन्दर वह खत्म हो सकता है। यह बात

सबको विदित ही है। ऐसे अनित्यमय इस संसार में हम शरीर आदि किसी भी चीज को नित्य नहीं मान सकते। मानव मरते समय अपने साथ संसार के शरीर एवं भोग सामग्री आदि नहीं ले जायेंगे। केवल आत्मा के द्वारा किये गये पाप-पुण्य मात्र ले जायेंगे। इस बात को परिज्ञानी लोग (केवल ज्ञानी) अच्छी तरह कह गये हैं। फिर भी लोग नहीं समझते। अतः हे मन शरीर रक्षा के मोह को छोड़कर आत्म रक्षा के कार्य में तत्पर हो जाओ। तभी कल्याण हो सकता है।

[१३२]

जरा मरण का दुःख

पुलुप्पोल् उवर्पूरि प्पोल्लांगु नारुं
अलुक्कुडंबु तन्नुल् वलदांय-विलुत्तुमिल्न्द
इन्न नडैयाय् इरक्कुं वर्गैयिनैं
नन्नेंजे: नाडाय् काण् नर्कुं

भावार्थ :-हे मेरे भले मन, तू कीड़ों के समान बुरे गुणों से भरे हुए और बुरे गुण पैदा होने के योग्य शरीर में बढ़ रहा है। तुम्हारा शरीर शय्या में कफ को उगलेगा तथा अन्य बुराइयों के साथ मरेगा। अतः तुम अच्छी तरह सोच विचार कर उस पर जो मोह हैं उसे छोड़ दो।

विशेषार्थ :-आचार्य मन को संबोधन कर बोलते हैं कि हे मन, तू जिस शरीर में बढ़ रहा है, वह कई दुर्गुणों का पिण्ड है। समझदार लोग उस पर घृणा करते हैं और उसे छोड़ने का

प्रयत्न करते हैं। मगर तू ऐसे शरीर में ही बढ़ रहा है, और उसे सुरक्षित रखने का भी प्रयत्न कर रहा है। तुम कितना ही प्रयत्न करो, फिर भी वह एक दिन शय्या पर पड़ेगा और कफ आदि जुगुप्सा के योग्य वस्तुओं को निकालने के साथ-साथ मरेगा। अतः तुम इसकी हालत को अच्छी तरह समझो और इस पर बेकार जो मोह बना रखा है उसे छोड़ दो। तभी तुम्हें भलाई हो सकती है।

[१३३]

आचारहीन व्यक्ति को मर जाना ही अच्छा है

ओलुक्क मिलनागि ओर्त्तुडैयनेनुं
पुलुप्पोदिन्द पुण्णिकोंडितां-कलुक्किरैयै
ओंबिन् मट्रेन्न उरुतिक्कण् निल्लाक्काल्
तेंबि विडुदले नन्ट्रु

भावार्थ :-आत्म संबन्धी एवं ज्ञान मार्ग के तत्व ग्रन्थों के गहरे अध्ययन से मनुष्य ज्ञानवान होते हुए भी कीड़ों से भरे एवं घाव से भयंकर जो शरीर है, वह गृद्धों का आहार बनने वाला है। ऐसे शरीर के साथ भी कोई दुराचार करने लगता है तो उसके ज्ञान से क्या फायदा है ? कोई फायदा नहीं है। जो व्यक्ति सदाचार मार्ग पर नहीं चलता है तो वह जिन्दा रहने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है।

विशेषार्थ :-मनुष्य तर्क, व्याकरण, सिद्धांत, पुराण और कलाज्ञान आदि बड़े-बड़े शास्त्रों को अध्ययन करता है। जिसके

कारण उसका ज्ञान विकसित होता है। उसे लोग विद्वान, महाविद्वान, पंडित ज्ञानवान, शास्त्र पारंगत आदि नाम से पुकारते हैं और उसे ऊँचा समझकर गौरव देते हैं। मगर ऐसा महाविद्वान शरीर की हालत को न समझकर अपनी मनमानी चलाता है तो वह कार्य सर्वथा अनुचित है। शरीर की वास्तविक परिस्थिति यह है:-शरीर सप्त धातुमय है। यह रोग की खान है। स्यार आदि पशु एव गृद्ध आदि पक्षियों का आहार बनने मात्र योग्य है। यह कभी भी पवित्र नहीं हो सकता। इत्यादि बातों को समझते हुए भी उस पर ध्यान नहीं देता। बल्कि ऐसे नीचतम शरीर के साथ दुराचार करने के लिये उद्यत होता है। चाहें वह विशेष विद्वान एवं शास्त्र पारंगत हो उसकी अपार विद्वत्ता को धिक्कार है। जो व्यक्ति सदाचार मार्ग से हट कर दुराचार के मार्ग पर चलने लगता है तो वह आदमी जिन्दा रहने की अपेक्षा मर जाना हो अच्छा है। यही आचार्य का निश्चित अभिप्राय है।

[१३४]

सच्चे महात्मा लोग सांसारिक वासना को त्यजेंगे

मुडै युडै अंगणं नाडोरुं उण्ड
कडै मुरै वाय् पोदर क्कण्डुन्-तडुमाट्रिल
सावा प्पिरवा इच् संपिरद वालकंक्कु
मेवादां मेय्क्कण्डार् नेंजु

भावार्थ :-दुर्गन्ध से भरे नाली के समान रोज खाने

वाली आहार की चीजें निन्द्य अवस्था में नव द्वारों से बाहर आते देखकर भी लोग जन्म-मरण रूपी इस मायामयी संसार में मोहित होते हैं। मगर इसके अनित्यत्व को जानने वाले सच्चे महात्मा लोग सांसारिक विषय वासना पर कभी भी अपना मन नहीं लगायेंगे।

विशेषार्थ :–शरीर सप्त धातुओं से भरा हुआ एक घड़ा है। इसके नवद्वार हैं। इन द्वारों से निकलने वाली चीजें बहुत ही निन्द्य एवं दुर्गन्धमय हैं। फिर भी मनुष्य ऐसे इस शरीर की बाहर को देखकर एकदम मोहित हो जाता है। उसके भीतर की अवस्था पर ख्याल नहीं करता। बिना विचारे ऐसे निन्द्य वस्तु पर आशा करना अज्ञानी मनुष्यों का काम हुआ करता है। मगर परिज्ञानी लोग ऐसे घृणामय सांसारिक विषय वासना पर मोहित नहीं होते। बल्कि इनकी वास्तविक हालत को अच्छी तरह विचार कर उसे छोड़ने का प्रयत्न करते हैं। यही बड़ों का उत्तम कार्य माना जायेगा।

[१३५]

बुद्धिमानों का कर्त्तव्य

वयिरु निरै क्कुमेल् वाविन्मि क्कूरिच्
सेयिरिडैप्पा डेय्माय् सीवन्–वयिरुमोर्
पेट्रियाल् आर्त्तिप् पेरु पयन् कोलवदे
कट्ररिन्द मान्द कंडन्

भायार्थ :–आदमी को हमेशा भर पेट खाना मिलता रहे

तो वह अपरिमित आशा के साथ दुष्कार्य में लगेगा। इसलिये पेट को कम खाना देना चाहिए जिससे वह पेट पांचों इन्द्रियों की सहायता मात्र दे सकें। सचमुच सम्यग्ज्ञान वृद्धि के कारण भूत शास्त्रों को मर्मज्ञ महात्माओं का कर्त्तव्य यह है कि इस शरीर से उतना ही फायदा उठा लेना चाहिए जिससे आगे जन्म लेने की मुसीबत न पड़े।

विशेषार्थ :–कमाकर खाने वाले व्यक्ति का समय कमाने में लग जाता है। उसे बेकार कार्य में समय लगाने की फुरसत नहीं मिलती। जो बाप-दादे की संपत्ति से पेट भरता है, उसे काम-काज करने की जरूरत नहीं पड़ती। बेकार आदमो का दिमाग बुरे कार्य में ही लगेगा। इसके दो कारण हैं:–पहला यह है कि बिना परिश्रम के खूब खाना मिलता है। दूसरा यह है कि समय काटना है। ऐसे ही लोग जुआ, रेस, खेल-कूद और सिनेमा आदि कार्यों में संपर्क रखते हैं और काम वासना आदि पचेन्द्रियों की लंपटता में भी लगे रहते हैं। अतः पेट को ज्यादा खाना देकर पंचेन्द्रियों को उत्तेजित न करें और सीमित आहार से इन्द्रियों को वशीभूत कर रखें। ऐसा करने के साथ-साथ परिज्ञानियों का कर्त्तव्य यह है कि संसार परंपरा के कारणभूत पुनर्जन्म को काटने का प्रयत्न करना चाहिये। यही शरीर से होने वाला सदुपयोग माना जा सकता है।

[१३६]

अपरिमित इन्द्रिय सेवन मत करो

पुलन्गल् पोरुट्टाग प्पोय्चान्दु नेञ्जे
सलगलैच्चार ओलुगल्-पुलन्गल्
ओरुक्कुं परुवत्तु चात्तणैयुं आगा
वेरुत्तु नीं उपडल् कडन्

भावार्थ :–हे मन, इन्द्रियों की तृप्ति के वास्ते पाप कार्यों को मत किया करो। यदि ऐसे कार्यों को मनमाने करते जाओगे तो बाद में उन इन्द्रियों को भी आपत्ति आ जायेगी। उन पाप कार्यों के कारण तुम्हें दुःख होते समय वे इन्द्रियां न तो सहायता करती और न समझाती बुझातीं। अतः इन्द्रियों की तृप्ति को ही प्रधानता देकर कुकृत्य मत किया करो। और उसे रोकने का प्रयास करो।

विशेषार्थ :–मनुष्य मद के कारण अन्धा रहता है। वे मद दो तरह के होते हैं। एक धन का मद है और दूसरा यौवन का। जिस व्यक्ति को पैसे का मद सिर पर सवार हो जाता है, वह अपने पैसे को शराब पीने, मांस खाने, अपरिमित भोग विलास करने आदि दुष्कार्यों पर लगाता है। जवानी के मद वाला भी ऐसे ही दुष्कृत्यों पर अपनी अमूल्य जवानी को लगा कर सारी शक्ति खो बैठता है। इन कारणों से दोनों व्यक्तियों की इन्द्रियां खराब हो जाती हैं। जवानी में ही बुढ़ापा आ जाता है। आखें दीखती नहीं। पैरों से चलना नहीं बनता।

ऐसी हालत में न तो इन्द्रियां काम देती हैं और न पैसे काम आते हैं। शरीर तो अनगिनत रोगों से पीड़ित हो जाता है। तभी उनकी आँखें खुलती हैं। अपने दुराचार एवं दुष्कृत्यों पर पछताता है। खुद अपने मुंह से कहता है कि मैंने बड़ा अन्याय किया है। उसका फल भोग रहा हूँ। समय बीतने पर रोने से क्या फायदा ? अतः पहले ही सोचकर मानवों को इन्द्रियों का दास नहीं बनना चाहिये, बल्कि उन्हें अपने दास बनाने की कोशिश करना चाहिए। तभी मानव को शान्ति मिल सकती है।

[१३७]

अति से होने वाली आपत्ति

पुगाप्पेरुग ऊट्टि पुलन्कण्मिक्कूरि
अवाप्पेरुगिअट्रत्तरुमाल्-पुगावुमोर्
पेट्रिया नूट्टि प्पेरुं पयन् कोलवदे
कट्रिरिन्द मान्द कंडन्

भावार्थ :-पेट को खूब खाना खिला देने से पाँचों इन्द्रियां हृष्ट-पुष्ट होकर वश में नहीं रहती हैं। मनमाने चलने लगती हैं। उन इन्द्रियों के कारण आशा बढ़ती है, जिससे मनुष्य नाश को प्राप्त होता है। हमें तो यह करना चाहिए कि पेट को उतना ही खाना खिलाया जाय, जिससे इन्द्रियां काबू में रह सकें। क्योंकि इस इन्द्रिययुक्त शरीर से मोक्ष के हेतु भूत कार्यों को साधना है। अतः इन्हें जरूरत के माफिक खिलाना ही बुद्धिमानो का कर्त्तव्य माना जायेगा।

विशेषार्थ : मनुष्यों के अवयवों में पेट सब से बलवान है। वह सभी से अपने कार्यों की पूर्ति करा लेता है। दुनियां में मनुष्य हाय-हाय मचाकर जो कमाते हैं, वे सब पेट के लिये ही हैं। यदि यह पेट न होता तो दुनिया में मनुष्यों को किसी तरह के कष्ट झेलने न पड़ते। इस पेट को भरने के लिए ही मानवों को कई तरह के कष्ट उठाने पड़ते हैं। और कई तरह के दुःख सहने पड़ते हैं। ऐसे इस पेट को खाना न खिलावें तो तकलीफ हैं और ज्यादा खिला दें तो और भी तकलीफ है। खाना न खिलाने से आदमी मर जाता है। और ज्यादा खिलाने से इन्द्रियां हृष्ट-पुष्ट होकर दुष्कार्यों में लग जाती हैं। जिससे शरीर और आत्मा दोनो का नुकसान होता है। शरीर का नुकसान यह है कि वह अनगिनत रोगों की खान बन जाता है। फिर क्या ? उसे दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है। आत्मा का नुकसान यह है कि इन्द्रियां दुष्कार्य में लगने से इस भव में अपकीर्ति होती है और परभव में नरकादि दुःखों को भोगना पड़ता है, अतः आत्मा को हित के बदले अहित होता है। इन सभी पहलुओं पर सोच-विचार कर बुद्धिमानों को चाहिए कि पेट को उतना ही खाना खिलावें जितनी आवश्यकता हो।

[१३८]

अन्य सभी को रोकने के पहले आशा को रोको

ओरुक्किलेन् ऊर्पसै एन्कण् पिररै
ओरुक्किर्पेन् एन्ट्ररैप्पै याकिल्–करुत्तोरिन्द

कर्करित्तु वकर्कोण्डेरिन्द्वारै क्काय् वकल्ला
पर्कलल् नाय् अन्न तुडैतु

भावार्थ :–रे मन, अपनी आशा को रोक नहीं पाता लेकिन अपनी स्वार्थ की चीजों को प्राप्त करने में धक्का देने वालों को दबाने दौड़ता है। इस तरह का कार्य उस कुत्ते के समान माना जायेगा कि जिसने अपने ऊपर पत्थर फेंकने वालों को छोड़कर लगे हुए पत्थर को काटते हुए अपने दांतों को खो बैठता हो।

विशेषार्थ:–मनुष्य अपनी आशाओं को तो रोक नहीं पाता वह अपने आवश्यक कार्यों को छोड़कर अपनी स्वार्थ सिद्धि के विरोधियों को दबाने या खत्म करने दौड़ता है। पहले यदि अपनी आशा को खतम कर देते तो कोई झगड़ा ही नहीं रहता। लेकिन उसे छोड़कर बेमतलब दूसरों पर झगड़ने दौड़ता है। इस तरह का मूर्ख कार्य उस कुत्ते के समान है जिसने अपने ऊपर पत्थर फेंकने वाले को छोड़कर, फेंके गये पत्थर को काटते हुए अपने दांतों को खो बैठा हो।

इसका आशय यह है कि आशारूपी विरोधी दूर नहीं है बल्कि अपने पास ही है। पास के विरोधी को दबादें तो दूर के विरोधी को दबाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

[१३९]

त्यागी महात्मा को ही अपना गुरु बनाओ :-

उल्लेप्पेरुं गुदिरै ऊरुन्दु वयप्पडुत्तिक्
कल्ल प्पुलनैन्दुं काप्पमैत्तु-वेल्लप्
पिरविक्कण् नीत्ता पेरुं गुणत्तारैन्
तुरवि त्तुणै पेट्रक्काल्

भावार्थ :-कोई व्यक्ति किसी त्यागी महान सन्त को अपना गुरु बना लेगा तो, उस वक्त वह अपने मनरूपी घोड़े पर सवार होकर उसे अपना अधीन बना लेगा। जो इन्द्रियां उसे ठगती थी और अपनी इच्छानुसार बुरे मार्ग पर ले चलती थीं उन्हें रोक लेगा। बाढ़ के समान रूप जो जन्म परंपरा है उसे भी पार कर आनन्दमय अपवर्ग की प्राप्ति कर लेगा।

विशेषार्थ :-हर व्यक्ति के उत्थान और पतन संगति के कारण से ही होते हैं। जिस व्यक्ति को सत्संगति मिल जाती है वह उत्थानरूपी महल पर चढ़ जाता है। और दुःख संगतिवाला भयंकर गड्ढे में गिर पड़ता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि सत्संगति की प्राप्ति अवश्य करें। यदि किसी व्यक्ति को भाग्यवश सर्वसंग परित्यागी एवं महान मुनिराज की संगति मिल जाती है तो वह अपना मन और इन्द्रियों को स्वाधीन बनाकर, अनादिकालीन जन्म परंपरा को काटता हुआ अविनाशी एवं आनन्दमय अपवर्ग की प्राप्ति कर लेता है। यह बात निश्चित है।

[१३६]

त्यागी महात्मा को ही अपना गुरु बनाओ :-

उल्लेप्पेरुं गुदिरै ऊरुन्दु वयप्पडुत्तिक्
कल्ल प्पुलनेन्दुं काप्पमैत्तु-वेल्लप्
पिरविक्कण् नीत्ता पेरुंगुणत्तारैन्
तुरवि त्तुणै पेट्रक्काल्

भावार्थ :-कोई व्यक्ति किसी त्यागी महान सन्त को अपना गुरु बना लेगा तो, उस वक्त वह अपने मनरूपी घोड़े पर सवार होकर उसे अपना अधीन बना लेगा। जो इन्द्रियां उसे ठगती थी और अपनी इच्छानुसार बुरे मार्ग पर ले चलती थीं उन्हें रोक लेगा। बाढ़ के समान रूप जो जन्म परंपरा है उसे भी पार कर आनन्दमय अपवर्ग की प्राप्ति कर लेगा।

विशेषार्थ :-हर व्यक्ति के उत्थान और पतन संगति के कारण से ही होते हैं। जिस व्यक्ति को सत्संगति मिल जाती है वह उत्थानरूपी महल पर चढ़ जाता है। और दुःख संगतिवाला भयंकर गड्ढे में गिर पड़ता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि सत्संगति की प्राप्ति अवश्य करें। यदि किसी व्यक्ति को भाग्यवश सर्वसंग परित्यागी एवं महान मुनिराज की संगति मिल जाती है तो वह अपना मन और इन्द्रियों को स्वाधीन बनाकर, अनादिकालीन जन्म परंपरा को काटता हुआ अविनाशी एवं आनन्दमय अपवर्ग की प्राप्ति कर लेता है। यह बात निश्चित है।

[१४०]

अपने मन को अवश्य बश करना है :-

परिन्देन्कोर् नन्मै पयप्पाय् पोल् नेञ्जे
अरिन्देन्नै आट्रवुं तिन्नल्-पुरिन्दु नी
वेण्डुव वेण्डुवेन् अललेन् विलुक्कुंणं
पूण्डेन् पोरियिलि पो

भावार्थ :-रे मन तेने मुझे भलाई की आशा दिखायी। लेकिन मुझे शतशः काट काट कर खा जाते हो। तुम बड़े लग्न के साथ जिन्हें पाने योग्य समझते हो, मैं उन कार्यों को नहीं करूंगा। मैं तो लालसा को छोड़ दिया है। अतः रे पागल मन, मेरे रास्ते से हट जा।

विशेषार्थ :-मन की आशा असीम हुआ करती है। कभी वह मन आशा रूपी घोड़े पर चढ़कर कहां-कहां दौड़ता है? कह नहीं सकते। कभी सोने का महल बनाता है, और कभी आराम का सुन्दर बगीचा। मगर अपनी लालसा की पूर्ति न हुई तो असीम वेदना के द्वारा मनुष्य को अणु से अणु खा जाता है। उसको शान्ति होने नहीं देता। अतः आचार्य का कहना है कि आशावान हमेशा दुःखी रहता है। उसे कभी भी शान्ति नहीं मिलती। इसलिये उस आशा से मुक्त हो जाओ। अर्थात् आशातीत बनो। उस समय मानव को अपने मन से संबोधित कर कहता है कि रे मन, तू फिर से मुझे अपने पंजे में फँसाने की कोशिश मत कर। यहां से हट जा। मुझे शान्ति मिलने दो।

[१४१]

विनय सर्व सुख दायी है :-

तन्नेत्तान् नेजञ्ञ् करियाग त्तानडंगिन्
पिन्नेत्तान् एय्दा नलनिल्लै-तन्नेक
कुडिकेडुक्कुं तीनेजिन् कुट्रेवल् सेयदल्
पिडिपडुक्क प्पट्ट कलिरु

भावार्थ :-कोई व्यक्ति अपने सब कार्यों में मन को साक्षी (गवाई) बनाकर विनय के साथ काम करेगा तो उसको दुनियां में अप्राप्य वस्तु है ही नहीं। उसे सभी तरह के भरपूर आनन्द मिलेंगे।

लेकिन वह अपने कुटुम्ब के सर्वस्व को नष्ट करने वाले दुश्चिन्तवन (दुर्विचार) करेगा तो उस व्यक्ति को, उस हाथी (नर) के समान माना जायेगा, जिसने अपने सामने खड़ी की गई मादा हाथी के मोह से गढ्डे में गिरकर सर्वनाश को प्राप्त किया हो।

विशेषार्थ :-हर व्यक्ति अपने मन के कारण से ही बनता है और बिगड़ता है। अच्छा बनना हो तो अपने मन को साफ़ रखना है। मन को बिगाड़ने वाला बुरा बनता है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध बात है।

उसके अलावा आदमी को विनयी रहना भी अत्यावश्यक है विनय के बिना मनुष्य का सारा गुण नष्ट हो जाता है।

दुनियां में विजयी व्यक्ति ही पूज्य माना गया है। विनयी की सभी लोग प्रशंसा करते हैं। उसे सब तरह के आनन्द एवं सुख मिलते हैं। सब लोग अविनयी (घमण्डी) का अनादर करते हैं। अतः हर व्यक्ति को चाहिये कि मन को साफ़ रखने के साथ-साथ विनयी भी रहें।

मनुष्य को ऐसा दुर्विचार कदापि नहीं करना चाहिये कि जिससे अपना कुल एवं सर्वस्व नाश हो जाय। दुर्विचार वाला गढ्डे में अवश्य गिरेगा। जैसे हाथी (नर) सामने खड़ी की गई मादा हाथी को देख कर मोह के कारण गढ्डे में गिर जाता है और अपनी स्वतन्त्रता को खो देने के साथ-साथ आजन्म दुःखी रहता है। यही मोह का फल है।

[१४२]

अभ्यन्तर त्याग ही श्रेष्ठ है :-

अल्ल्र् इरुन्दुंतं उल्लमर प्पेट्रारेल्
कललविल् सोलैयां काट्टला कांडुल्लुं
उल्लं अरप्पेरु कल्लारेल् नाट्टुल्लु
नण्णि नडुवूरुलार्

भावार्थ :-जो व्यक्ति गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी अपने मन को काबू में रखनेवाला हो तो वह मधुमय फूलों से भरे जँगल में रहने वाले साधु के समान है। लेकिन कोई व्यक्ति मुनिवेश धारण कर वन में रहता है, फिर भी अपने मन को वश

न कर सका तो, वह घर पर रहकर गृहस्थी चलाने वाले दुराचारी के समान माना जायेगा।

विशेषार्थ :–गृह में रहने वाला कोई व्यक्ति यदि मनः शुद्धि याने निर्ममता के साथ रहता हो तो वह मुनि तुल्य है। लेकिन कोई गृहस्थाश्रम को छोड़कर मुनि बन गया, मगर अपने मन को काबू में न हीं रख सका तो वह मुनि होते हुए भी अधम है।

यहां पर ध्यान देने की बात यह है कि स्वामी समंतभद्राचार्य के श्लोक का आशय इस के साथ बराबर मिलता है। वह यह है :–

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थों निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः॥

अतः बाह्य परिग्रह त्याग की अपेक्षा अभ्यन्तर परिग्रह त्याग की महिमा अपरंपार है।

[१४३]

मन के विजेता सर्वश्रेष्ठ है :–

निन्नै यरप्पेरु किकिलेन्नन्नैजे
पिन्नै यान् यारै प्पेरुकिर्पेन–निन्नै
अरप्पेरु किर्पेनेल् पेट्रेन्ट्रोण्ड
तुरक्कुं तिरप्पदो र्ताल्

भावार्थ :–रे भले मन, तुम्हें थोड़ा सा भी वश नहीं कर सका हूं। यदि तुम्ही को वश नहीं कर सका तो बाकी को कैसे जीत सकूंगा। भले प्रकार से तुम्हें अपने अधीन बना लूंगा तो दुनियां में त्याग को अपनाने के लिये उपमातीत कुंजी को इसी जन्म में प्राप्त कर लिया है।

विशेषार्थ :–मन को विजय करना साधारण बात नहीं है। मन विजयी को सर्व विजयी बताते हैं। यदि कोई अपने मन को स्वाधीन कर लिया हो तो उसे कुछ भी बाकी नहीं है। वशी आदमी सर्वजित् होकर त्याग मार्ग को इसी जन्म में अपना लेता है। वही आगे कल्याणकारी त्याग मार्ग के उपदिष्टा बन जाता है।

[१४४]

पांचों इन्द्रिय आत्मा के विलासी दोस्त है :–

आदन् पेरुंकलियांलन् अवनुक्कुल्
तोलन्मार् ऐवरुं वीण्किलैञ्ार्–तोलर्
वेरुप्पनलुं उण्डेलुन्दु पोनक्काल् आदन्
इरुक्कुमां उण्ड रुडन्

भावार्थ :–मोह लिप्त जो आत्मा है, उसको पांचों इंद्रियां ही पक्के दोस्त है। वे दोस्त उस आत्मा की आपत्ति के समय में सहायक नहीं बनते। समझने को बात यह है कि बुद्धिमानों से जो पाप कर्म निकृष्ट माने गये हैं, उन से प्राप्त दुःखों को

भोगते हुए शरीर के साथ ही इन्द्रियां भी नष्ट हो जाती है। मगर उन इन्द्रियों के कारण इकट्ठे किये गये ऋणरूपी जो सपाक कर्म है, उसे वह आत्मा परभव में भी भोगना ही पड़ेगा।

विशेषार्थ :-आत्मा को इन्द्रियों के कारण से ही बुरे कार्यों में प्रविष्ट होना पड़ता है। वे इन्द्रियां आत्मा के पक्के दोस्त है। आत्मा उनकी तृप्ति के वास्ते अपनी सारी शक्ति और समय को लगाती है। इस कारण से आत्मा को तीव्रतम कर्मों को संचय करना पड़ता है। लेकिन वे इन्द्रियाँ उन कर्मों के फल को अवश्य भोगते हैं। और आखिर शरीर के साथ नष्ट भी हो जाते हैं। चाहे उन इन्द्रियों के निमित्त समंत किये गये कर्म उस भव में पूर्ण रूप से न भोग सके तो, उनके अवशिष्ट कर्मों को अगले भव मे अवश्य भोगना ही पड़ेगा। वे भुगते बिना कभी भी छूटेंगे नहीं।

अतः बुद्धिमानों को चाहिये कि इन्द्रियों के दास न बनें, बल्कि उन्हें अपने दास बना लें। यदि उन्हें मनमानी छोड़ दे तो वे बड़ा भारी नुकसान कर डालेंगी। उनसे भयकर आपत्तियाँ आने की सभावना है। इसलिये हमें जागरुकता के साथ रहना अत्यावश्यक है।

[१४५]

मन के विजेता ही सर्व विजेता है :-

तन्नोक्कुन्देय्वं पिरिदिल्लै नान्ट्रन्नेप्
पिन्ने मनमर प्पेट्रानेल्-एन्ने

एलुत्तोण्णे नोक्कि इरुमेंयुं कण्डाँणु
अरुट्कण्णे निर्प दरिवु

भावार्थ :–सुख के लिये प्रयत्न करने वाले के समान आत्मा को बुरे मार्ग पर लगाकर पीछे पछताने वाला जो मन है, उसे कोई जीत लेगा तो उसके समान दूसरा कोई देव (भगवान) नहीं है। व्याकरण और ज्योतिष आदि शास्त्रों को खोजने से परभव के लिये कोई फायदा नहीं है। इस भव में यश और परभव में सुख प्रदान करने वाले धार्मिक ग्रन्थों का अनुसंधान करें और दयावान बन कर सदाचार मार्ग पर चलें यही बुद्धिमता का कार्य माना जायगा।

विशेषार्थ :-मन सुख पाने की इच्छा करता है। परन्तु चलता है बुरे मार्ग पर। ऐसी हालत में उसे कैसे सुख मिल सकता है ? वह सुख के बदले दुःख को पाकर फिर पछताता है हाय, मैं ने बहुत बुरा काम किया। इस तरह बाद में पछताने से क्या फायदा ? कुछ भी नहीं है। लेकिन कोई व्यक्ति अपने मन को हमेशा बुरे मार्ग पर चलने से रोक लेता हैं तो, वह साधारण मानव नहीं है बल्कि भगवान के समान है।

अतः आचार्य का कहना यह है कि ज्योतिष आदि निरर्थक ग्रन्थों के . अनुसन्धान में अपना समय लगाकर जीवन को बर्बाद करना ठीक नहीं, बल्कि बुद्धिमता के साथ इह पर भव में सुख देने वाले महान् धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करना भी करुणावान (अहिंसक) बन कर मोक्ष प्राप्त करना लाभदायक है।

[१४६]

समझदार और मूर्ख दोनों की चिन्ता बराबर हैं ।

तडुमाट्रं अंजिय तन्मै उडैयार्
विडुमाट्रं तेन्दं जिजित्तुंजार्–तडुमाट्रं
यादुं ओरियारुं तुप्त तं ऐंपुलनुं
आरुंवगै यादांगों लेन्ट्रु

भावार्थ :–बुद्धिमान लोग दुःख के कारण भूत जो जन्म मरण है उसके लिये डरते हैं। और उसके निवारणार्थ बिना निद्रा के सोचते रहते हैं। मगर जन्म-मरण के दुःख से न डरने वाले जो मूर्ख लोग है, वे अपने इन्द्रिय सुख की प्राप्ति के उपाय पर बिना निद्रा के सोच में पड़े रहते है।

विशेषार्थ :–मनुष्य दो तरह के होते हैं। एक बुद्धिमान है दूसरा मूर्ख। बुद्धिमान लोग सोचते हैं कि संसार प्रपच में जन्म-मरण ही सबसे बड़ा दुःख है। उससे निवृत हुए विना मनुष्य सुख नहीं पा सकता। अतः वे उस जन्म-मरण के निवारण के लिये दिन रात चिंता से विचार करते रहते हैं।

मगर उसके विपरीत जो मूर्ख हैं, वे तो जन्म-मरणरूपी सांसारिक दुःख के लिये डरते नहीं है। वे हमेशा इन्द्रियों के सुख पर एक दम रत रहते हैं। और उसी की प्राप्ति के लिये जो-जो उपाय हैं उस पर रात-दिन चिंता के साथ विचार करते रहते हैं।

इसका मतलब यह है कि बुद्धिमान लोग संसार से मुक्ति पाने का उपाय सोचते हैं। और मूर्ख लोग संसार में डूबने का उपाय सोचते हैं। दोनों अपने-अपने विषयों पर चिन्तित हैं।

[१४७]

पंचेन्द्रियों से होने वाली बुराइयां :-

अविल पोरियेन्दि कीति इरुविनैयाल्
तीविल नी गोदादि सेविक्कुन्-लीविल
पलियिन्मै येय्दिन परैयाद पावं
वलियुं वरुदलु मुण्ड,

भावार्थ :-बुराइयों से संबन्ध रखने वाले पंचेन्द्रियों के कारण घाति और अघाति नामक कर्म आते हैं। उन कर्मों के कारण नरक और निगोद आदि नीच गतियों में जाना पड़ता है। इससे जीव कभी भी बच नहीं सकते। इसके अलावा इन कर्मों से अत्यधिक आवरण, दोष, अज्ञान, पाप कर्म आदि उत्पन्न होते हैं। इसी कारण से संसार में जन्म मरण लेकर घूमना पड़ता है।

विशेषार्थ :-पंचेन्द्रियों का कार्य ज्यादा तरह बुराई के साथ ही संबन्ध रहता है। उससे जीव पाप कर्मों को बांधते हैं। उन पाप कर्मों के कारण क्रोध, मान, माया और लोभ आदि दोष. अज्ञान तथा अनाचार उत्पन्न होते है। उनसे फिर पाप कर्म बांधते हैं। पुनः उनसे अज्ञान आदि का प्रादुर्भाव होता हैं।

इस तरह अनादि कालीन कर्म परंपरा के कारण जीव संसार सागर में जन्म-मरण लेता हुआ दुःख परंपरा को भोगता रहता है। अतः बुद्धिमानों का कर्त्तव्य यह है कि पंचेन्द्रियों को काबू में रखें।

[१४८]

अन्यन्तर त्यागी निर्मोही होते हैं :-

अलैपुनलुल् निर्पिनुं ताम्ररै ईन्ट्र
इलैयिन् कण् नेर्निला दाकुं-अलैविर्
पुलन्गलिल् निर्पिनुं पोच्चा प्पिलरे
मलंकडिनु आला दवक्कुं

भावार्थ :-जैसे लहर से भरे पानी में रहने वाले पद्मपत्र पर पानी टिकता नहीं है। अर्थात् वह पानी से लिप्त नहीं होता। वैसे ही मुनिगण आशा-पाशरूपी पानी में रहते हैं। फिर भी उससे लिप्त नहीं होते। याने पंचेन्द्रिय ही मनुष्य को खींच ले जाकर आशा-पाश रूपी पानी में डाल देता है। वे दुनियां को नचाते हैं। सबको अपने अधीन बना लेते हैं। सब लोग उन पर नाचते हैं। उन्हें जीतना असाधारण हैं। फिर भी ऐसे चंचलमय इन्द्रियों को जो जीत लेता है याने उनके अधीन न होकर, उन्हें अपने अधीन बना लेता है वह सचमुच वीर है। उसकी वीरता के सामने कोई टिक नहीं सकता। अर्थात् मुनि गण इन्द्रियों के दास नहीं होते बल्कि उन इन्द्रियों को अपना दास बना लेते हैं।

[१४६]

स्वार्थ विहीन धर्म सर्वश्रेष्ठ माना जाता है :-

पेट्रि करुमं पिलैयाम सैंय् कुरिन्
पाट्रिन्कण् निल्ला दरं सेयग-मट्रदु
पोन्ट्रा प्पुकल् निरुत्ति प्पोय्पिरन्द ऊर् नाडिक्
कन्ट्रडै त्ताय् पोल् वरुं

भावार्थ :-रे मन यदि तू सच्चे धर्म को अवश्य करना चाहता है तो पहले स्वार्थ त्याग करो। ऐसे निःस्वार्थ धर्म ही यहां (इस भव में) अविनाशी यश का कारण बनने के साथ-साथ परभव में भी सुख-संपत्ति के प्रदान करने के लिये जरूर दौड़ आयेगा। जैसे गाय अपने बछड़े को ढूंढ कर दूध पिलाने जाती है।

विशेषार्थ :-हर व्यक्ति को सुख-भोग की प्राप्ति पुण्य से ही मिलती है। वह पुण्य, दान और धर्म करने से प्राप्त होता है। दुनियां में धर्म दो प्रकार से किया जाता है। एक तो केवल नाम पाने के लिए किया जाता है, और दूसरा स्वार्थ त्याग रूप आत्म सुख पाने के लिए। आजकल बहुत करके पहला मार्ग ही अपनाया जाता है। उसे छोड़ कर दूसरे मार्ग को अपनाना आवश्यक है। दोनों से पुण्य तो मिलते हैं। परन्तु पहले की अपेक्षा दूसरे मार्ग के धर्म से अपार सातिशय पुण्य मिलता है। जिससे इस भव में यश की प्राप्ति अपने आप हो जाती है और वही परभव के सुख का कारण बन जाता है। इस आशय को

समझाने के वास्ते आचार्य ज्वलन्त उदाहरण देते हैं कि–जैसे गाय अपने बछड़े को दूध पिलाने के लिए स्वयं ढूंढ कर जाती है वैसे ही निःस्वार्थ पुण्य भी पर भव में आदमी को ढूंढते हुए जाकर आनन्दमय एवं अविनाशी सुख सपत्ति को प्रदान करेगा।

[१५०]

सुख दुःख को समान समझो :–

पेरलिवु सावु पिरप्पिन्बन् तुन्बमेन्
ट्रारुल अन्नांल् अमैन्दन–तेरि
अवै यवै वन्दाल् अलुंगादु विम्मादु
इवैयिवै एन्ट्रणरर् पाट्र्.

भावार्थ :–हर व्यक्ति को अमीरी-गरीबी, जन्म-मरण, सुख-दुःख ये तो अपने-अपने पूर्व जन्म में किये गये पुण्य-पाप के अनुकूल मिलते हैं। ऐसे सुख और दु.ख बदल-बदल कर आते समय मनुष्य को खुशी या रंज नहीं करना चाहिए। उस समय सोचने की बात यह है कि हमें पूर्व भव के पुण्य के कारण सुख मिल रहा है और पाप के कारण दुःख मिल रहा है।

विशेषार्थ :–मनुष्य को सुख-दुःख अपने पूर्वोपार्जित पुण्य पाप के कारण मिलते हैं। यदि मनुष्य पूर्व भव में दान, धर्म, पूजा भक्ति आदि पुण्य कार्य किया हो तो उसे बिना माँगे सुख-भोगादि सामग्रियां मिल जाती हैं। अथवा हिंसा, झूठ, चोरी,

कुशील आदि दुष्कृत्यरूप पाप कार्य किया हो तो दरिद्रता, हीनाँग और रोग आदि को भोगना पड़ता है। पुण्य के कारण सुख, भोग, सुन्दरता, दीर्घायु और यश आदि सामग्रियां मिलते समय खुशी के मारे फूले नहीं समाना चाहिए। और पाप के कारण दुःख, अलपायु, हीनाँग, कुरूप और अपयश आदि के भोगते समय दुःख के मारे सिर पीटना नहीं चाहिये बल्कि उन के कारण पर विचार कर समता भाव के साथ शान्ति को अपनाना बुद्धिमानों का कर्त्तव्य माना जायगा।

[१५१]

अपनी हानि वृद्धि के लिये स्वकृत कर्म (कार्य) ही कारण है :-

ताने तनक्कु प्पकैवनुं नट्टानुं
ताने तनक्कु मरुमैयुं इम्मैयुं
ताने तान् सेय्द विनैप्पयन् तुय्त्तलाल्
ताने तनक्कु क्कारे

भावार्थ :-अपने लिये अहित करने वाला शत्रु आप (खुद) ही है। और हित करने वाला दोस्त भी आप (खुद) ही है। अपने इह-परभव के सुख-दुःख को करने वाला भी आप (खुद) ही है। अपने पूर्वोपार्जित कर्म के अनुसार उसके फल को भोगने से किये गये कर्म फल भोक्तृत्व का उदाहरण भी आप (खुद) ही है।

विशेषार्थ :-हर व्यक्ति को अपने किये गये कर्म के अनुसार हित और अहित मिलते हैं। जब अहित होता है तो उसके

कारण अन्य कोई शत्रु नहीं है बल्कि खुद ही है। क्योंकि कर्म के कर्त्ता अन्य नहीं है, खुद ही है। वैसे ही हित करने वाला भी अन्य न समझ कर अपने को ही समझना चाहिए। इसी तरह इह-परभव के सुख-दुःख के बारे में भी समझना जरूरी है। और दूसरी बात यह है कि कर्म के फल को भोगते समय हम कहते हैं कि भगवान ने ऐसा किया, राजा ने इस तरह का कठोर दण्ड दिया, सरकार ने कड़ी सजा दी, पुलिस ने खूब पीटा। यह सब वास्तव में ठीक नहीं है। वस्तुतः हमें समझना यह है कि कर्म के फल को जैसे हम भोगते हैं वैसे ही अन्य को भुगतना पड़ता है। इस तरह समझ लेना चाहिये।

(१५२)

अपना कर्म ही अपना सहायक है :-

सेय्विनै यल्लाल् शिरन्दार् पिरिरिल्लै
पोय्विनै मट्रै प्पोरुलेल्लां-मेय् दिनविल्
तायार् मनैवियार् तन्दैयार् मक्कलार्
नीयार् निनैवालि नेञ्जु

भावार्थ :-रे मन, तुझसे किये गये कर्म के सिवाय और कोई भला सहायक नहीं होता। तेरे विचार के अनुसार जिन वस्तुओं को स्थिर समझते हो, सचमुच वे सब अस्थिर याने नाशवान हैं। तू सच्ची बातें जानना चाहें तो देखो, माँ-बाप, पति-पत्नि, बाल-बच्चे ये सबके सब तेरे साथ कैसे संबन्ध रखते हैं ? ठीक तरह से सोच कर देखो कि वे तेरे साथ क्या शाश्वत संबन्ध रखते है ? बिलकुल नहीं।

विशेषार्थ :–लोग समझते हैं कि अपने सगे-संबन्धो, मां-बाप पति-पत्नि, भाई-बहिन, बाल-बच्चे और अन्य रिश्तेदार अपनी रक्षा करेंगे कहीं-कहीं तो लोभ या वैमनस्य के कारण माँ अपने बेटे को मार डालती है और बेटा माँ को। पति-पत्नि को खत्म कर देता है और पत्नि पति को। इस तरह की हालत में लोग रक्षक के बदले भक्षक बन जाते हैं। कैसी विडंबना है? कुछ लोगों का कहना यह है कि मेरा बेटा है, मेरा बेडा पार कर देगा। और प्यारी बेटी है, मेरी रक्षा जरूर करेगी। ये सब झूठ है। जब जीव मरने जा रहा है तो उस समय उसे कोई भी नहीं बचा सकता। अरे सच बात तो यह है कि जीवन यापन की दशा में भी आपस की सहायता नहीं मिल पा रही है। सब कुछ होते हुए भी कुछ लोग भूखे मर रहे हैं। यदि वास्तव में रक्षा करने वाला कोई है तो भाग्य ही है। इसमें कोई शक नहीं है। अतः हमें चाहिए कि सच्चे सहायक बनने वाले भाग्य को हर तरह से संपादन करने का प्रयत्न करें न कि रिश्तेदार के भरोसे पर पड़े रहें।

[१५३]

शरीर की यथार्थता :–

उयि तिकियाग उडंबु मण्णागच्
सेयि कोल् विनैकुयव नाकच्–सेयिर्तीरा
एण्णरुनल् याक्कै क्कलं वनैयुं मट्रदनुल्
एण्णरुनोय् तुन्बं अबक्कुं

भावार्थ :–जो दोष देने वाला कर्म है वही कुलाल है। श्वासोच्छवास रूपी जो हवा है वही डंडा और चाक है। सप्त धातु ही मिट्टी है। ऐसे दोषमय पात्र रूपी शरीर को बनाया गया है। उस शरीर में निवास करते हुए उसे भोगने वाला जीव है। उसके (शरीर) गिनती में अशक्य कई बीमारियां रहती हैं।

विशेषार्थ :–यहां रूपकालंकार के द्वारा शरीर की परिस्थिति पर विचार किया गया है। जैसे कुलाल मिट्टी को चाक और डंडा आदि की सहायता से बर्तन बनाता है, वैसे ही कर्म रूपी कुलाल, श्वासोच्छवास रूपी हवा को ही डंडा और चाक बनाकर सप्त धातु रूपी मिट्टी के द्वारा इस शरीर को बना डाला है।

इसका खास मतलब यह है कि शरीर कर्म के कारण बनता है। वह निकृष्ट सप्त धातुमय है और अनगिनत रोगों का पिण्ड है। इस शरीर को जो भोगने वाला जीव है, उसे उन रोगों को भी भोगना पड़ता है। जीव को इस शरीर के सुख के बदले दुःख (रोगादिक) ही ज्यादा मिलता है। अतः ऐसे रोगमय एवं अशुचि रूप शरीर पर मोह रखना अनुचित है।

[१५४]

मानवों को परभव के बारे में ख्याल रखना अत्यावश्यक है :–

मुंपिरप्पिल् तांचेय्द पुण्णियत्तिन्नल्लदोर्
इंपिर न्दिन्परा निन्ट्रवर्–इप्पिरप्पे

इन्नु करुदुमेल् एदं करिन्दरत्तै
मुन्नि मुयन्ट्रोलुकर् पाट्ट्

भावार्थ :–मानवों ने पूर्व भव में जो कुछ धार्मिक कार्य किया है उसके कारण ही उन्हें ऊँचे कुल में जन्म मिला है। उसी पुण्य के कारण अब वे सांसारिक भोग सुखों को भोग रहें हैं। इसी तरह भोग सुख में लवलीन होकर अपने जीवन को बिता देगें तो अगले भव में उन्हें दुःख ही दुःख मिलेगा। इसलिए अपने मन को विषय वासना से हटा कर परभव के लिये सुख देने वाले धार्मिक कार्यों में लगाना अत्यन्त आवश्यक है।

विशेषार्थ :–मानवों को ऊँचे कुल, धन धान्यादि संपत्ति, रूपलावण्य, आरोग्य, दीर्घायु, सत्पुत्र, मित्र, कलत्र भोगों को भोगने की क्षमता आदि पूर्व भव में संचित पुण्य के कारण से ही मिलते हैं। यदि हम अपने जोवन को केवल भोग-विलास में ही लगा देंगे तो कमाया हुआ पुण्य यहीं खर्च हो जायगा और अगले भव में खाली हाथ जाना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में वहाँ पर (पर भव में) दुःख के सिवाय और मिलेगा हो क्या ? कुछ नहीं। इसलिये बुद्धिमान लोगों को सोचना यह है कि जैसे पूर्व भव के पुण्य के कारण इस भव में सुख-भोगादिक की प्राप्ति होती है; वैसे ही अगले भव के लिये सुख संपत्ति आदि को प्राप्त करना है तो हमें अपने मन को धार्मिक कार्यों में लगाकर भरपूर पुण्य संचित कर लेना अत्यावश्यक है। नहीं तो परभव में खूब पछताना पड़ेगा।

[१५५[

अगले भव के निमित्त धर्म न करने वाला वज्र मूर्ख है :-

अम्मैताय् चेय्द अरत्तिन् बरुपयनै
इम्मैत्तु य्त्तिन्बुरा निन्द्रवर्-उम्मैक्कु
अरं सेय्यादु ऐपुलनुं आट्दल् नल्लाक्
करन्दुण्ड तोंबामै याम्

भावार्थ :-जैसे व्यक्ति गाय के दूध को दुह कर खुशी के साथ पीता है, बाद में उस गाय को भूसा आदि दिये बिना भूखा रखता है तो उसे दूसरे दिन दूध नहीं मिलता। वैसे ही जो मनुष्य पूर्व भव में किये गए धर्म के कारण से मिले हुए सुख को इस भव में खूब भोगता है और पर भव के लिये धर्म कार्यों को किये बिना पांचों इन्द्रियों के द्वारा सुख अनुभव मात्र करता रहता है तो वह बड़ा मूर्ख आदमी समझा जायेगा।

विशेषार्थ :-जैसे दूध पीने की इच्छा रखने वाला व्यक्ति गाय से दूध दुह कर पीने के बाद यदि उस गाय को भूसा आदि खाना न खिलाता है तो अगले दिन उस गाय से उस आदमी को दूध नहीं मिलेगा, और उसे पछताना पड़गा। वैसे ही कोई व्यक्ति पूर्व भव के धर्म रूपी गाय से दूध रूपी पुण्य को पाकर सुख भोग को भोगता है। मगर अगले भव के लिए धर्म रूपी गाय को सुरक्षित न रख कर मरवा डालेगा तो उसे सुख कहाँ से मिलेगा ? बिल्कुल नहीं। अर्थात् यदि मनुष्य अगले भव के लिये सुख चाहता है तो धर्म अवश्य करता है। नहीं तो कदापि सुख नहीं मिलेगा और पछताना पड़ेगा।

[१५६]

अपना शुभाशुभ कार्य ही तीनों भवों का दर्पण है :-

इरन्द पिरप्पिट्रां चेय्द विनैयैप्
पिरन्द पिरप्पाल् अरिग-पिरन्दिरुन्दु
सेय्युं विनैयाल् अरिग इनिप्पिरन्दु
एयदुं विनैयिन् पगन्

भावार्थ :-मनुष्य भव को धारण किए हुए प्रत्येक व्यक्ति वर्तमान भव के अपने सुख-दुःख के द्वारा पूर्व भव में किए गए शुभाशुभ कर्मों को अच्छी तरह जान सकते है। और अगले भव मे प्राप्त होंने वाले सुख-दुःखों को, वर्तमान में किए जाने वाले शुभ-अशुभ कार्यों से जान सकते हैं।

विशेषार्थ :-कुछ लोगों का कहना यह है कि आजकल पूर्व भव और अगले भव के बारे में बताने वाले अवधि, मन पर्यय और केवल ज्ञानी नहीं है। यदि होते तो पूर्व भव में अपने से किये हुए शुभ-अशुभ कर्मों को जान सकते हैं। तथा अगले में मिलने वाली अपनी गति एवं सुख संपत्ति आदि कैसी रहेगी? इसे भी जान सकते हैं। मगर आजकल ऐसे ज्ञानी नहीं हैं। यदि होते तो हम अपनी हालत को जान लेते और सुधार लेते आदि।

शायद आचार्य इसीं बात को आधार मानकर कहते हैं कि विशेष ज्ञान की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि पूर्व भव में किये गए शुभ अशुभ कर्मों के अनुसार ही वर्तमान में सभी को

सुख-दुःख मिल रहे हैं। अब वर्तमान में हम जो शुभ-अशुभ कार्य कर रहे हैं, ये सब तो हमें प्रत्यक्ष हैं। इनका फल अगले भव में इन्हीं के आधार पर ही मिलेगा।

अतः तीनों भवों के (पूर्व भव, इह भव, पर भव) शुभ-अशुभ याने पुण्य-पापों का दर्पण (सुख-दुःख) अपने पास ही मौजूद है। फिर इधर-उधर फिरने की क्या जरूरत है? कोई जरूरत नहीं है।

[१५७]

मोक्ष प्रयास के बिना जन्म बेकार है :–

तायतन्दै मक्कल् उड़न्पिरन्दार् सुट्रत्ता
रायवन्दु तोन्ट्रि अरुविनैयाल्–मायवदनकण्
मेलैप्पिरपुं इदुवानाल् मट्रेन्नै
कूलि क्कूलुत कुरै

भावार्थ :–सांसारिक लोग अन्य सम्बन्ध के बिना अपने-अपने कर्म के अनुसार संसार में मां-बाप, पुत्र-मित्र, कलत्र और बन्धु-बान्धव बनकर जन्म लेते हैं। लेकिन संसार से मुक्ति पाने के लिए प्रयत्न किये बिना अपने लोगों को सुलाकर मरण को प्राप्त कर लेते हैं। फिर अगले भव में भी इसी तरह जन्म लेकर अपने लोगों को सुला-सुला कर मरण के शरण लेते हैं। इसी तरह करते रहेंगे तो उनका जीवन आपस के वेतन भोगी कार्य के सिवाय और कोई फायदाजनक नहीं रहेंगा।

विशेषार्थ :–संसार में मानव अपने-अपने कर्म के अधीन होकर माता-पिता, पुत्र-मित्रादि का रूप धारण करते हुए जन्म लेते हैं। कुटुम्ब रूपी नाटक मंच पर कुछ दिन तक खेल खेलकर पिता, पुत्र, कलत्रादि बन्धुजनों को पति-पत्नि को, पत्नि-पति को वियोग के रूप में सुलाकर काल गति को प्राप्त कर लेते हैं। यह संसार का स्वाभाविक है। लेकिन बुद्धिमानों का कर्त्तव्य यह होना चाहिये कि ससार से मुक्तियाँ लें। न जाने लोग उस ओर ध्यान नहीं देते?

मरण के बाद वे लोग फिर से जन्म लेते हैं। उस भव में भी यही हालत है। इस तरह जन्म लेना, वियोग के कारण दूसरों को सुलाना और मरना यही दुनियाँ की हालत हुआ करती है। इस तरह दुनियांदारी करते रहना तो एक तरह से जीवन बर्बाद करना है। इस मनुष्य जीवन से फायदा उठाने के बजाय बेकार खोना मुर्खों के कार्य के सिवाय और क्या हो सकता है।

[१५८]

निरतीचार गृहस्थाश्रम मुनि मार्ग से श्रेष्ठ है :–

विनैकात्तु वन्द विरुन्दोम्बि निन्ट्रान्
मनैवालक्कै नन्ट्रु तवत्तिन्-पुनैकोदै
मेल्लियल् नल्लालु नल्लल् विरुन्दोविच्
सोल्लेदिर सोलला लेनिल्

भावार्थ :-दुष्कृत्यों को हटाकर अपने घर आये हुए अतिथि को यथायोग्य सत्कार करने वाले और आनेवाले अतिथि की प्रतीक्षा में रहने वाले गृहस्थ के गृहस्थाश्रम मुनि मार्ग से भी श्रेष्ठ है।

सिर के काले एवं सुन्दर बालों से अलंकृत तथा शीलवन्ती जो नारी है, वह अपने घर आये हुए अतिथि के सत्कार में अपने पति की बातों का उल्घंन नहीं करती बल्कि अपने पति के पथानुगामनी बनती है तो उस तरह की नारी को नारी न कहा जाय बल्कि नारी रत्न कहा जायगा।

विशेषार्थ :-सबसे पहले श्रावकों का कर्त्तव्य यह है कि अपने आचरण को शुद्ध एवं सुसंस्कृत बनाकर रखें। उनका दूसरा कर्त्तव्य यह है कि अतिथि सत्कार नामक जो शिक्षा व्रत है, उसे भी पालना अनिवार्य है। अतिथि के माने यह है कि जो तिथि, नक्षत्र आदि को देखे बिना पधारते हैं, वे ही अतिथि कहलाते हैं। ऐसे दिगम्बर जैन साधु ही हो सकते हैं, अन्य नहीं इस तरह के महान अतिथि को सत्कार करने का सौभाग्य अतिशय पुण्यवान को ही मिलते हैं। अतः आये हुए अतिथि मुनि राजों को यथाविधि आहार दान देने के साथ-साथ आगे आने वाले अतिथि की प्रतीक्षा करना भी श्रावकों का कर्त्तव्य है। इस तरह जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का नियमानुसार पालन करता है तो उसके मार्ग को मुनि मार्ग से भी श्रेष्ठ माना गया है।

दूसरी बात यह है कि इस अतिथि सत्कार में पुरुष के

साथ देने वाली गृहिणी है। यदि वह अनुकूल नहीं रहेगी तो इस कार्य को पुरुष अकेला नहीं कर सकता। अतः आचार्य का कहना यह है कि इस महान धार्मिक कार्य में श्रावक के साथ जो श्राविका अनुकूल एवं अनुगामिनी बनती है तो उसे साधारण नारी नहीं, नारीमणी कहकर प्रशंसा करते हैं।

इस तरह के धार्मिक स्वरूप एवं मँगलमय गृहस्थाश्रम को मुनि मार्ग से भी श्रेष्ठ कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं है। क्योंकि मुनि मार्ग तो गृहस्थाश्रम के आधार से ही चलता है। इसलिये इस गृहस्थाश्रम की प्रशंसा उचित एवं उपयोगी है।

[१५६]

गृहिणी नारी के सद्गुण :-

कोण्डान् कुरिप्पोलुगल् कूरिय नाणुडैमै
कण्डदु कण्डु विलैयामै-विण्डु
वेरुप्पन सेय्यामै वे कामै नीक्कि
उरुप्पो डुणर्वुडैयाल् पेण्

भावार्थ :-पति के इशारे पर चलना, लज्जा युक्त होना, हर चीजो को देखकर उस पर मुग्ध न होना, पति के अवांचनीय कार्यों को नकारना, अपने दुर्गुणों को हटाना, ग्राह्य वस्तुओं को ग्रहण करना, सौंदर्य एवं ज्ञान से युक्त होना ये सारे गुण सद्गृहिणी के लिए अत्यावश्यक है।

विशेषार्थ :-कुलवंती नारी के लक्षण बतलाते हुए कहते हैं कि पति अपने मुंह से किसी विषय को न कहने पर भी उसकी आकृति को देखकर समझदारी से काम करना है। स्त्रियां वस्तुतः सलज्जा होनी चाहिये। क्योंकि तभी वह अपने सदाचार को पाल सकती है। केवल कुलटा ही निर्लज्जा होती है। काई सुन्दर चीज दीख पड़े तो उसे देखते ही उस पर मुग्ध होना और उसे प्राप्त करने के लिए पति से लड़ पड़ना, यह कार्य गृह स्त्रियों के लिए अनुचित है। क्योंकि उन चीजो को खरीदने में पति को शक्ति आदि पर विचार किये बिना जिद्द नहीं करना चाहिए। किसी कार्य को करने में पति की इच्छा नहीं है तो स्त्रियों को हठ के साथ उसे नहीं करवाना चाहिए। जैसे पति सिनेमा जाने से रोकता है तो फौरन रुक जाना है। अन्य जो दुर्गुण होते हैं जैसे मूर्खता, अविवेकपना, जडत्व आदि हैं उन्हें निकाल फेंकना है। सदाचार, भगवद् भक्ति, गुरु सेवा आदि गृहस्थ विषयों को ग्रहण करना हैं दुनियां में नारियों के पास कितने भी अच्छे गुण रहें फिर भी रुपवती न हो तो वे अपने पति को संतुष्ट नहीं कर सकती। अतः रूप को गुण के रूप में ग्रहण किया गया है। मूर्ख स्वभाव वाली न होकर ज्ञानवती होना अत्यावश्यक है। यदि कोई स्त्री ज्ञान शून्या होगी तो उसे सन्मार्ग पर लाना अतीव कठिन है। अतः ये सब सद्गुण, जिस नारी के पास मौजुद हैं, वही सचमुच सद्गृहिणी कहला सकती है।

[१६०]

सद् गृहिणी के लक्षण :–

मडप्पदु उम् मक्कट् पेरुवदूउम् पेण्पाल्
मुडिप्पदु उम् एल्लारुं चेय्वर–पडैत्तदनाल्
इट्टुण्डिल वालवकै पुरिन्दुतां नल्लरत्तो
निर्पारि पेण्डिरेन्बार्

भावार्थ :–जवानी अवस्था को प्राप्त करना, पुत्र सन्तति को पैदा करना, नारी के योग्य जेवर पहनना, ये सब कार्य सारी नारियां करती हैं। लेकिन सदाचारिणी महिला को करना यह है कि अपने पास थोड़ी सी संपत्ति होवें, उनमें से यथाशक्ति गरीबों को देना, अपनी घर गृहस्थी को यथा योग्य चलाना, अन्य धार्मिक कार्यों को सप्रेम करना, सतीत्व का पालन करना ये ही सद् गृहिणी के लक्षण हैं।

विशेषार्थ :–हर नारी बालपन से जवानी को प्राप्त कर पुत्रों को पैदा करती है। और ठाट-बाट के साथ श्रंगार कर मजे में रहती है। ऐसे अधर्म मय जीवन से कोई फायदा नहीं है। सचमुच कोई नारी सद्गृहिणी हो तो उन्हें करना यह है कि गरीबों को यथाशक्ति सहायता करते हुए अपनी गृहस्थी को गौरव के साथ चलाना है। धार्मिक कार्यों में अग्रसर रहने के साथ-साथ सतीत्व को अपनाते हुए जीवन बिताना भी अत्यावश्यक है। सदाचार स्वरूप इन कर्त्तव्यों के कारण अपना जीवन धार्मिक रहेगा और इह पर सुख प्राप्ति के लिए कारण बनेगा।

[१६१]

पत्नी, पति को सन्तुष्ट करने की विधियां :-

वलि पाडुवैयलाय् वालक्कें नडा अय्
मुनियादु सोलिट्रिच् सेय्दङ्-केतिरुरैयावु
एत्तिप्पणियु मेल् इल्लालै आण् मगन
पोट्रि प्पुलैयुं पुरिन्दु

भावार्थ :-पति के विचार के अनुसार गृहस्थी चलाना, उनसे कही गयी बातों को प्रेम से कहना, उनके साथ वाद-प्रतिवाद न करना, उनकी बातों की तारीफ करना इस तरह के कार्य जिस गृहिणी के द्वारा अपने पति के प्रति किये जाते हैं तो उस समय उसका पति उस गृहिणी पर अपार प्रेम करने लगेगा और उसे संतुष्ट रखेगा।

विशेषार्थ :-पति-पत्नी को आपस में प्रेम से रहना बहुत जरूरी है। तभी उन लोगों की गृहस्थी आनन्दमय रहेगी। वास्तव में गृहिणी को सबसे पहिले जानना यह है कि पति को किस तरह से खुश किया जाय। उसे खुश करने के लिये कई उपाय हैं। वे हैं-उन (पति) की बातों को मानना, उनकी सम्मति से गृहस्थी के कार्यों को चलाना, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना, उनके साथ वाद-विवाद न करना, उनकी बातों एवं कार्यों की तारीफ करना आदि। कोई पति अपनी प्रिय एवं सुन्दर नारी के मुखारविन्द से अपनी तारीफ की बातें सुनकर एकदम फूला नहीं समाता और खुश होकर अपनी पत्नी

के प्रति आकर्षित हो जाता है। इसके अलावा पति का कर्त्तव्य भी यह हुआ करता है कि हर कार्य में पत्नी की सम्मति लेना आवश्यक है। जिससे आपस में प्रेमभाव बढ़ता है। गृहस्थाश्रम सानन्द चलता है। घर में धन-धान्य की वृद्धि होती है। गृहस्थी सुखमय रहती है। जिस घर में पति-पत्नी के अन्दर हमेशा लड़ाई-झगड़ा होता रहता है और कभी भी शान्ति नहीं रहतो, उस घर में लक्ष्मी का निवास भी नहीं रहेगा। अतः लक्ष्मी निवास तथा आनन्दमय गृहस्थी चाहने वाली गृहिणो को चाहिये कि अपने पति के साथ हमेशा प्रेम का बर्ताव करें।

[१६२]

सतीत्व के विरोधी कार्य

तलैमकनिनन् तीन्दुं रैनकल् तान्पिरिल् सेर्दल्
निलैमैयिल् तीप्पेण्डि सेंरदल्–कलनणिन्दु
वेट्र् प्पुगुदल् विलाक्काण्डल् नोन्बिडुदल्
कोट्रोडियाल् कोललियुमारु

भावार्थ :–पति को छोड़कर अलग रहना, दूसरों के घर बिना बुलाये बार-बार जाना, दुराचारिणी स्त्री के साथ दोस्ती रखना, जेवरों को पहन कर (अलंकार कर) अन्य ग्रामों को अकेली जाना, पति से बिना पूछे व्रतादिक ग्रहण करना, ये सब सुन्दर चूड़ियों वाली नारियों के सतीत्व भंग होने के कारण हैं।

विशेषार्थ :–नारियों का सतीत्व एक अमूल्य रत्न है। उसे सुरक्षित रखना उन लोगों के लिए अनिवार्य है। सचमुच

कोई नारी अपने सतीत्व को निरतीचार पूर्वक पालना चाहती हैं तो उन्हें नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। वे हैं-(१) पति को छोड़कर पत्नि को अलग नहीं रहना चाहिये क्योंकि उस समय उस पर पर पुरुष कटाक्ष करने की संभावना है। (२) दूसरों के घर बिना काम बार-बार जाना अनुचित है। उससे तिरस्कृत होने के साथ-साथ सतीत्व में लाँछन हो सकता है। (३) दुराचारिणी स्त्री के साथ दोस्ती रखने से सतीत्व में कलंक होने के अलावा भ्रष्ट होने की भी संभावना है। (४) जेवरों से अलकृत नारी को दूसरे गांवों में जाना तो जीवन और सतीत्व दोनों को खतरनाक है। (५) मेला आदि पर अकेली जाना भी उचित नहीं है। अकेली रहने वाली स्त्री को हर समय आपत्ति आ सकती है। गुंडे लोग समय की ताक में रहते हैं। अतः होशियारी से रहना बहुत जरूरी है। (६) पति से बिना पूछे व्रतादिक को भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। (आज) व्रतादिक को ग्रहण करने में पति की अनुमति को अनावश्यक समझने वाली नारी की तो हर काम में बुरी हालत होने लगेगी। उस स्त्री के आचरण भ्रष्ट होने में कुछ भी देर नहीं लगती। अतः अपने सतीत्व को नीरतीचार पूर्वक पालन करने वाली स्त्री को चाहिए कि ऊपर कहे गये अतीचारों से दूर रहने की कोशिश करें।

[१६३]

दुराचारिणी नारी पति को यमराज हैं :-

अयलूरवन् योग अमज लाडिक
कयलेकर्ण आर एन्नुदिप्-पुयलैंपाल

वण्डोच्चि निन्ड्रुलं वाले तंडगण्णाल्
तण्डोच्चिय् सेल्लुड कूट्र

भावार्थ :–पति देव ग्रामान्तर कार्यार्थ गये हुए हो, ऐसे समय पर (कोई नारी) अलंकार के योग्य हल्दी, सिन्दूर आदि लगाना, मीन नयनों पर काजल लगाना, काले मेघ के समान जो सिर के बाल हैं; उनको संवार कर खुशबूदार फूल लगाने से उन पर आये हुए भ्रमरों को हटाने के व्याज से हाथों को हिला कर चलना आदि इन सारी विकृत क्रियाओं से युक्त लंबी आंखों वाली जो नारी है, वह गदायुध को लेकर पति के पीछे दौड़ती एवं छिपाती हुई क्रोध से मारने वाली यमराज ही है।

विशेषार्थ : नारियों का अलंकार अपने पतिदेव को संतुष्ट करने मात्र है। लेकिन कोई नारी पतिदेव के न होते हुए भी मेंहदी और काजल आदि श्रंगार वस्तुओं को लगाकर अपने को यदि सजा लेती है तो सचमुच उसके दिल में विकारभाव विद्यमान है। ऐसी दशा में यदि उसके पति का रहना उसके दुराचार को रुकावटसा मालूम पड़े तो एक न एक दिन वह दुष्टा नारी अपने पति को खत्म करके स्वतत्र बन जायगी। इसमें कोई आश्चर्य करने की बात नहीं है। अतः आचार्य का कहना यह है कि दुःशील नारी पति के लिए यमराज ही है।

[१६५]

पति-पत्नियों की एकता ही गृहस्थी का जीवन है :-

मरुविय कादल् मनैयालुं तानुं
इरुवरुं पूण्डुय्प्पिन् अल्लाल्-ओरुवराल्
इल्वाल्क्कै येन्नुं इयल्पुडैय वान्सकडं
सेल्लादु तेट्रिट्र निन्द्र

भावार्थ :-प्रेमवती भार्या और प्रेमी पति ये दोनों मिल कर गृहस्थी रूपी गाड़ी को चलावें तो वह आराम से चल सकती है। उन दोनों में से किसी एक के द्वारा चलाई जाय तो वह आगे न चलकर रुक जायगी।

विशेषार्थ :-आचार्य का कहना यह है कि गृहस्थी तो एक गाड़ी के समान है। जैसे बैलगाड़ी को चलाने के लिए दो बैलों की जरूरत पड़ती है। और उनमें से एक न हो तो गाड़ी आगे न चलकर रुक जायगी। वैसे ही गृहस्थी रूपी गाड़ी को चलाने के लिए पति पत्नी रूपी दो व्यक्तियों की जरूरत है। उनमें से एक हो तो वह गृहस्थी रूपी गाडी भी आगे न चलकर रुक जायगी। इसका आशय यह है कि पति-पत्नी दोनों जीवित रहने मात्र से काफी नहीं है। बल्कि दोनों परस्पर प्रेम से सबंद्ध होकर गृहस्थी को चलाना जरूरी है। यदि दोनों व्यक्ति मौजूद होने पर भी प्रेमभाव के बिना आपस में लड़ाई-झगड़ा करते रहेंगे तो गृहस्थी में न तो शान्ति रहेगी और न गृहस्थी आगे बढ़ती जायगी। अतः गृहस्थी में पति-पत्नियों को मौजूदा होने

के साथ-साथ परस्पर प्रेम और एकता से रहना भी जरूरी है। इनके बिना वह गृहस्थी सद् गृहस्थी नहीं है बल्कि दुरवस्थी है।

[१६५]

गृहस्थ लोगों के कर्त्तव्य

पिच्चैयुं ऐयमुं इट्टुप्पिरन्ट्रारं
निच्चलुं नोक्कादु पोटयोरीइ-निच्चलुम्
कोल्लामै कात्तुं ककोडुत्तुण्डु वाल्वदे
इल्वालक्कै एन्नुं इयल्पु

भावार्थ :-भीख मांगने वाले गरीबों को यथाशक्ति सहायता करना, त्यागियों को आहारदान आदि कर्त्तव्यों की पूर्ति करना, पर स्त्री के ऊपर मोह न करना, झूंठ न बोलना, कभी भी हिंसा न करना। घर आये हुए मेहमानों को भोजन करा कर तदन्तर खुद भोजन करना ये सब गृहस्थों के योग्य कर्त्तव्य हैं।

विशेषार्थ :-दान दो तरह के होते हैं। करुणा दान और पात्र दान। करुणा दान उन्हीं लोगों को दिया जाता है कि जो लोग बिना खाने के मर रहे हैं और बिना कपड़े तरसते हैं, ऐसे लोगों पर दया दिखाकर जो दान दिया जाता है, उसे करुणा दान कहते हैं। दूसरा पात्र दान :-पात्र तीन तरह के होते हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य। इन पात्रों को सबसे पहले आहार

दान देना अत्यावश्यक है। इसके अलावा इन्हें औषध और शास्त्र दान भी देना चाहिए। इसके साथ-साथ अहिंसा, सत्य, अचौर्य और ब्रह्मचर्य इन चारों को भी पालने का उपदेश है। परिक्षित परिग्रह पांचवा अणुव्रत है। उसे भी दान में ग्रहण किया गया है। यदि गृहस्थों के पास अपने उपयोग से ज्यादा धन हो तो उसे दान में उपयोग कर देना चाहिए। फिर मनुष्यों को पैसे का लोभ ज्यादा नहीं रहेगा। और समझने की बात यह है कि इन पांचों अणुव्रतों में अहिंसा सत्य और अचौर्य इन के पालन करने के साथ-साथ चौथा जो ब्रह्मचर्य है, उसे परदार निवृत्ति और स्वदार संतोष के रूप में अपनाना है। इनके अलावा जो परिमित परिग्रह है उसे भी आचरण में लाना अत्यावश्यक है। क्योंकि लोभ के कारण से ही संसार में भयंकर पाप कार्य होता है। कहा भी है "लोभ पाप का बाप बखानो" इस तरह करुणा दान, पात्र दान, पांचों अणुव्रतों का पालन और मेहमानों का सत्कार ये सब गृहस्थों के कर्त्तव्य माने गये हैं।

[१६६]

गहस्थों के दोष :-

विरुन्दु पुरन्दरान् वेलाय्मै सेय्यान्
पेरुन्दुक्कवरैयुं पेणाव्-पिरिन्दुपोय्क्
कल्लान् कडुविनै मेकेण् डोलुगुमेल्
इल्वालकै येन्ब दिरुल्

भावार्थ :-अपने घर आये हुए अतिथियों को आहार न

देना, भिखमगों की सहायता न करना, सत्पुरुषों को गौरव न देना, गृहस्थी के लोगों को (स्त्री और बाल बच्चे) छोड़कर स्थानान्तर में रहते हुए ज्ञानवृद्धि के ग्रन्थों का अध्ययन न करना इस तरह के दोषमय कार्य के साथ जो व्यक्ति अपना जीवन बिताता है, उसकी गृहस्थी उसके लिए नरक ही है।

विशेषार्थ :–गृहस्थाश्रम में रहने वाले व्यक्तियों के लिए कुछ आवश्यक कर्त्तव्य होते हैं। वे हैं–अतिथि सत्कार, भिखमंगों की सहायता, सत्पुरुषों को गौरव देना, और धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन आदि। पहला जो अतिथि सत्कार है, वह तो गृहस्थों के लिए अनिवार्य है। कहा जाता है कि जिस घर में अतिथियों का (मुनिराजों) सत्कार न होता हो, वह घर श्मशान के समान है। अतः पात्र दान की आवश्यकता है। दूसरा गरीबों की सहायता–गृहस्थ को उसे भी करुणा की दृष्टि से (न कि पात्र की दृष्टि से) सहायता करना आवश्यक है। उसमें दो विषय समाये गए हैं। पहला है लोक व्यवहार को अपनाना। दूसरा है करुणा भाव दिखाना। जिस व्यक्ति के दिल में करुणा याने दया ही नहीं है उसको सम्यक्त्व कैसे प्राप्त हो सकता है? अतः दया दान की बड़ी आवश्यकता है। तीसरा है सत्पुरुषों को गौरव देना। इस कार्य को जो व्यक्ति नहीं करता उसे यों समझना चाहिये कि उसको पात्र और अपात्र का विवेक नहीं है। ऐसे व्यक्ति को बुद्धिहीन या मूर्ख कहते हैं। इस तरह मूर्ख रहना कभी भी उचित नहीं है। चौथा है धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन। यह तो गृह में रहकर नहीं हो सकता। अतः बाल-

बच्चों को छोड़कर किसी भी स्वाध्याय शाला में जाना जरूरी है। वहीं धर्म ग्रन्थों (तत्व ग्रन्थों) का अध्ययन भले प्रकार हो सकता है। धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन के बिना व्यक्ति धर्म कार्य में अग्रसर नहीं हो सकता। अतः धर्म ग्रन्थों के अध्ययन की बड़ी जरूरत है। इन सब कार्यों को करने वाला ही सद् गृहस्थों कहलाता है। उसी को स्वर्गादि सुख की प्राप्ति होती है। जो व्यक्ति इन सत्कार्यों से विमुख रहता है। उसे पाप का पात्र बनना पड़ता है। और वह उस पाप के कारण नरकादि दुर्गति में जाकर भयंकर दुःख भोगता है। अतः गृहस्थों के योग्य कार्यों से विमुख रहना नरक गति का स्वागत करना है।

[१६७]

त्यागियों को देने वाला दान ही श्रेष्ठ है।

अट्टुण्डु बालवा र्क्कतितिकल् एंमान्ट्रुं
अट्टण्णा माटिक् उडैयवर्–उट्टुण्डु
वालवाक्कुं वालवार् अतितिकल् एन्ट्रुरैत्तल्
वीलवाक्कुं वीलवार् तुणें

भावार्थ :–खुद खाना बनाकर खाने वाले गृहस्थों को हमेशा वे ही अतिथि होते हैं जो खुद खाना बनाकर न खाते हों और सम्यक्तव एव सदाचार से अलंकृत हों। यदि खुद खाना बनाकर खाने वाले गृहस्थ, ऐसे अन्य गृहस्थ लोगों को अतिथि मान लिया जाय तो, वह ऐसा समझा जायगा कि पहाड़ के ऊपर से गिरने वाले को, उसी तरह गिरने वाला सहायक हो।

विशेषार्थ :–गृहस्थ लोग खुद अपने लिए खाना बनाकर खाते हैं। जिसके कारण से उन्हें पाँच प्रकार के सूनुदोष लगते हैं ❀। मुनि लोग इन सूनु दोषों से बचने के लिए अपने हाथों से खाना बनाकर नहीं खाते। परन्तु गृहस्थों के द्वारा नवधा पुण्य क्रम से जो आहार दान दिया जाता है उसे ग्रहण करते हैं। इसलिए गृहस्थों के अतिथि मुनिगण ही होते हैं। न कि गृहस्थ। यदि गृहस्थ अन्य गृहस्थ लोगों को अतिथि मान लिया जाय तो, वह पहाड़ से गिरने वाले व्यक्ति, उसी तरह गिरने वाले दूसरे (अन्य) को सहायक मानने के समान है। अर्थात् जब दोनों गिर रहे हैं, ऐसी अवस्था में एक-दूसरे का कैसे सहायक बन सकता है ? कभी नहीं।

यहां पर कहने का तात्पर्य यह है कि खुद खाना बनाने से पाप लगते हैं। उन पापों को परिमार्जन करने के लिए सत्पात्रों को दान (आहार दान) दिया जाता है। उसे छोड़कर अव्रती गृहस्थ को अतिथि मानकर दान देने लगे तो उससे पाप का परिमार्जन नहीं होता, बल्कि सूनु दोष के कारण अधिक पाप लगता है। अत: गृहस्थों के अतिथि मुनिगण ही होते हैं न कि गृहस्थ। इन बातों को अच्छी तरह समझ कर मुनिराजों को आहार दान आदि अवश्य देना चाहिए।

❀खण्डनी पेषनि चुल्ली उदकुंभी प्रमार्णनी।
पंचसूना गृहस्थस्य तेन मोक्षं न गच्छती ॥

अर्थ :–काटना, पीसना, आग जलाना, पानी फेंकना और

जमीन को धोना तथा साफ करना ये पांचों सूनु दोष कहलाते हैं। गृहस्थ लोग इन कार्यों को छोड़ नहीं सकते। इस कारण से गृहस्थ लोगों को मोक्ष नहीं मिलता। वह मुनि होकर ही मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

(१६८)

त्यागमय जीवन ही सच्चा जीवन है :-

नोरुंगुपेय ताक्किय कूलार उण्ड
पिरंगिरु कोटोडु पन्ट्रियुं वालुं
अरंचेय्दु वाल्वदे वालक्कै मट्रेल्लां
वेरुंपेलै तालक्कोलीई यट्रु

भावार्थ :-टूटे-फूटे चावल से बनाये गये खाने को (खिचड़ी) दो लंबे दाँत वाले सूअर खूब पेट भर खाकर अपना जीवन बिताता है ऐसा जीवन जीवन नहीं है। धर्ममय जीवन ही सच्चा जीवन है। धार्मिकता के बिना जीने वाला गृहस्थ उसी के समान है जैसे खाली पेट को मजबूत ताला लगाकर रखा हो।

विशेषार्थ :-दुनियां में हर व्यक्ति अपना पेट भरता है और जीवन बिताता है। किसी भी तरह से सूअर और कुत्ता भी अपना पेट भरता है। और उसमें भी पैसे वाले के घर में रहने वाला कुत्ता तो बढ़िया से बढ़िया खाना खाता है और मजे से अपना जीवन बिताता है। इससे उसका जीवन श्रेष्ठ

नहीं समझा जा सकता। चाहे कोई व्यक्ति घटिया से घटिया खाना खाता हो, तो भी उसका जीवन त्यागमय और धार्मिक स्वरूप हो तो उसके समान दूसरे का (विलासी का) कदापि नहीं हो सकता। अनियमित रूप से पेट भर, बढ़िया खाना खाने वाले का जीवन श्रेष्ठ नहीं है। बल्कि सब कुछ होते हुए भी त्यागवृत्ति को अपना कर चलने वाला धर्ममय जीवन ही सर्व श्रेष्ठ जीवन है। उसी के जीवन में पुण्य रूपी रत्न भरे पड़े हैं। अन्य जीवन खाली पेटी हैं। अतः खाली पेटी के समान जो विलासी जीवन है, उस त्याग कर पुण्य रूपी हीरे-जवाहरात से भरे त्यागमय जीवन को अपनाना ही सच्चे गृहस्थ का लक्षण है और विवेकी पुरुष का कर्त्तव्य भी है।

[१६६]

मानव शरीर और संपत्ति सत्कार्य के लिए ही है :-

उप्पुक्कुवट्टिन्मिसैयिरुन्दु उण्णिनुं
इट्टुणा क्कालत्ता क्कूरादां-तोक्क
उडम्बु पोरुलुं उडैयानो नंन्मै
तोडकाक्काल् एन्न पयन्

भावार्थ :-कोई व्यक्ति पर्वत जैसे नमक के ढेरे पर बैठकर खाना खाने पर भी, उस खाने में यदि नमक की मिलावट न हो तो उस खाने में स्वाद नहीं रहेगा। वैसे ही सप्त धातुमय शरीर और संपत्ति प्राप्त किए हुए व्यक्ति अनुपम धार्मिक कार्यों को यदि नहीं करेगा तो उसके शरीर और संपत्ति से कोई

फायदा नहीं है। बेकार है।

विशेषार्थ :-मनुष्य का शरीर सप्त धातुमय है। उसके कारण उसका शरीर पर्वत जैसा बड़ा लगता है। ऐसे व्यक्ति के पास यदि संपत्ति भी होवें तो उनका (शरीर और धन) उपयोग केवल भोग विलास में न लगाकर अनुपम धार्मिक कार्य में लगाना है। तभी शरीर और संपत्ति का सदुपयोग माना जायगा। नहीं तो कोई नमक के ढेरे पर बैठकर खाने पर भी उसके खाने में यदि थोड़ासा भी नमक का उपयोग नहीं हुआ हो तो वह खाना बिना स्वाद के बेकार रहता है। वैसे ही अधर्मी पुरुष के शरीर और संपत्ति बेकार है।

इसका आशय यह है कि हर व्यक्ति को चाहिए कि अपने शरीर और संपत्ति को हमेशा धार्मिक कार्यों में लगावें। केवल भोग विलास में लगाकर बर्बाद न करें।

[१७०]

मिली हुई संपत्ति में से असमर्थों की भी सहायता करनी है :-

पेट्रेनाल् पेट्रनाल् पेट्रदनुल् आट्रुवदोन्ट्र
इट्रेनाल् ईत्तुण् डिनिट्रोलुगल्-सुट्रु
इतनिल् इलेसुडै काणों अट्रनै
मुगनिन् ट्रिडै तेरियुं गाल्

भावार्थ :-हे मन, जब कभी तुम संपत्ति को प्राप्त करते हो तो उसमें से करने योग्य धार्मिक कार्यों को कल नहीं, आज

नहीं, अभी करो। और गरीबों को यथाशक्ति सहायता देने के साथ-साथ खुद भी (तुम) भोगने योग्य भोगों को भोगो। अलावा इसके सदाचार मार्ग पर चलो। सचमुच जो धार्मिक कार्य करने का है, उस पर शुरू से आखिर तक विचार (खोज) किया जाय तो सब जगह इससे बढ़ कर आसान मार्ग कहीं नहीं दीखता।

विशेषार्थ :–आचार्य महाराज मन को संबोधन कर समझाते हैं कि हे मन, जब कभी तुम्हें संपत्ति की प्राप्ति होती है तो तब उस संपत्ति को अपने सुख-भोग मात्र में लगाना नहीं है। संपत्ति तो पुण्य से ही मिलती है अतः उस संपत्ति से अगले भव के लिए भी पुण्य संपादन करना अत्यावश्यक है। नहीं तो पीछे (अगले भव में) पछताना पड़ेगा। पुण्य संपादन के लिए कई मार्ग हैं। अर्थात धार्मिक कार्य करना, दान देना, व्रतानुष्टान करना आदि। दान में दया दान भी एक है। वह मुख्य दान माना जाता है। वह यह है कि गरीब (असमर्थ) लोगों को यथाशक्ति सहायता करना है। दूसरा पात्र दान है। यहां समझने की बात यह है कि जो वस्तु दान के रूप में दी जाती है, उससे पुण्य मिलता है। और जो वस्तु अपने भोग कार्य में उपयोग होती है, उससे पाप मिलता है। याने पुण्य की निर्जरा हो जाती है। अतः पाप के बदले पुण्य कमाना बेहतर है। इस विषय में सचमुच हमें क्या करना है ? इस पर जब हम विचार करते हैं तो साफ-साफ दीख पड़ता है कि इससे सुलभतर मार्ग दूसरा नहीं है अतः इसी मार्ग को अपना कर धन संपत्ति का सदुपयोग करने के साथ-साथ पुण्य की प्राप्ति करना है।

[१७१]

पूर्व भव के दान से प्राप्त धन को फिर से दान में न लगाना बड़ी मूर्खता है :-

कोडुत्तु क्कोणन्दंरं सेल्वं कोडादु
विडुत्तु त्तं वीरल्दिल् कण्डार्-केडुप्पदन्कण्
आट्र मुडिया देनिनुंतां आट्रवार्
माट्रा मंरुमै काण्बार

भावार्थ :-पूर्वभव में जब हम धन संपत्ति को प्राप्त किए हुए थे, उस समय गरीबों को दान दिए थे। उस दान पुण्य के कारण से ही हमें इस जन्म में धन सपत्ति मिलीं है। फिर यदि हम उस धन से असमर्थों को दान नहीं देते हैं तो अपना नाम बिगड़ जाने के साथ-साथ धन संपत्ति भी देखते-देखते नष्ट हो जाती है। ऐसी हालत को प्रत्यक्ष में देखने वाले बड़े (समझदार) लोग गरीबों को यथाशक्ति अवश्य सहायता (दान) करते हैं। अर्थात् सहायता की मांग करने वालों को मना किए बिना दान देकर पर भव के लिये सुख की प्राप्ति कर लेते हैं।

विशेषार्थ :-आचार्य महाराज का खास मतलब यह है कि दान से ही धन की प्राप्ति होती है। वर्तमान में जो व्यक्ति धनिक होकर रहता है तो, उसके धन प्राप्ति का कारण यह है कि उसने पूर्व भव में खूब दान-पुण्य किया है। उसी कारण से अब उसको धन संपत्ति मिली है। यदि अब वह गरीबों को दान नहीं देता है तो उसे अगले भव में धन संपति नहीं मिलेगी

उस कारण ये उसे वहां महान् दुःख भोगना पड़ेगा। मतलब यह है कि पूर्व भव के दान पुण्य से वर्तमान भव में जैसे धन संपत्ति मिली है। वैसे ही अगले भव में धन संपत्ति पाने के लिए, उसे इस भव में भी गरीबों को अथवा असमर्थों को यथा-शक्ति दान देना चाहिए। नहीं तो अगले भव में दरिद्रनारायण बन कर रहना होगा और कठिन दुःखों को भोगना पड़ेगा।

[१७२]

परिमित परिग्रह (दातृत्व) के साथ जीना मनुष्य जन्म साफल्य है

पट्टार्प्पडुत्तु प्पडादाक्कुं वाट्चेरिन्दु
विट्टोलिव दल्लाल् वंकूट्रं-ओट्टिक्
कलाय् क्कोडुमै सेय्यादु कण्डदु पात्तूण्डल्
पुलार्कुडिला लाय पयन्

भावार्थ :-पूर्व जन्म में जो दान-धर्म नहीं किये हैं उन्हें यमराज अल्पायु में ही मार डालता है। जो दान-धर्मादि सत्कार्य किये हैं वे पूर्णायु होकर चिरंजीवी बनकर रहते हैं। उनके पास यमराज न जाकर अपनी तलवार को म्यान में डाल लेता है और छोड देता है। भयंकर यमराज ऐसे धर्मात्माओं को गुस्से से नहीं सताता। अतः हर एक आदमी को चाहिए कि जो कुछ धन संपत्ति मिली है उनमें से थोड़ा बहुत दूसरों को देना और खुद भी खाना यही मनुष्य शरीर प्राप्ति का महत्व है।

विशेषार्थ :–आचार्य लोक व्यवहार के जरिये दान धर्म करने की प्रेरणा देते हैं। हमें समझने की बात यह है कि मनुष्य अल्पायु में मर जाने का कारण पाप ही है। दीर्घायु हो कर रहना, सारी संपत्ति को पाना सर्वांग सुन्दर बनना और सुख भोगों को भोगना ये सब पुण्य के कारण से प्राप्त होते हैं। यमराज अल्पायु वालों को मार डालता है और दीर्घायुष्मन्तों को छोड़ देता है, यह सब लोक व्यवहार है। कविगण लोक व्यवहार को अपनाते हैं और अपनाने की पद्धति भी है। मरना और जीना सब कुछ अपने कर्माधीन है। इसके लिए न कोई यमराज है और न ब्रह्मा ही है। यह साधारण लोगों को समझाने का तरीका है।

यहां समझने की बात यह है कि यदि तुम्हें दीर्घायु होकर रहना है और सुख संपत्ति को पाकर भोगना है तो अवश्य दान धर्म करो और पुण्य प्राप्त करो। उसके बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

[१७३]

मूर्ख और बुद्धिमानों के पांच-पांच गुण बतलाते हैं :–

तुण्डांम पोय्बेकुलि पोय्च्चा प्पलुक्कारेन्द्र्
ऐन्दे केडुवार्क्कियल् पेब्ब पण्बाला !
ईदल् अरिदल् इयट्रदल् इन्सोर्कट्
ट्रायदल् अरिवार् तोलिल्

भावार्थ : आचार्य श्री दो तरह के गुण बतलाते हैं। सुनो! बड़ों के साथ नम्रता न दिखाते हुए अभिमानी रहना, गुस्सा करना, भूल जाना, द्वेष करना ये पांचों अवगुण विनाशी लोगों के हैं। गरीबों को दान देना, अच्छे विषयों को खोज कर जानना, समझे हुए विषयों को बिना आलस्य के करना, सबसे प्रिय वचन बोलना, ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थों की खोज करना ये पांचों सद्गुण बुद्धिमानों के हैं।

विशेषार्थ :–आचार्य मूर्ख और बुद्धिमानों के गुण बतलाते हैं। इसका मतलब यह है कि अपने लायक जो हैं, उन्हें ग्रहण कर लेना चाहिये।

मूर्खों के गुण हैं :-घमण्डी रहना, झूठ बोलना, गुस्सा करना, अच्छे विषयों को भूल जाना, दूसरों के प्रति द्वेष करना ये पांचों मूर्खों के गुण माने जाते हैं।

सज्जनों के गुण हैं :–असमर्थों को उनकी आवश्यकता के अनुसार सहायता करना अच्छे विषयों को जानने का प्रयत्न करना, सद्विषयों को टाले बिना यथाशीघ्र करना, सबसे हित-मित और प्रिय वचन बोलना, धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करना ये पांचों सज्जनों के गुण माने जाते हैं।

हर कोई सज्जन बनना चाहता है। कोई भी दुर्जन बनना नहीं चाहता। लेकिन काम तो उसके अनुकूल होना चाहिए न। अतः दोनों के लक्षण सामने रखे गये है। जो उचित मालूम पड़ें उन्हें ग्रहण करें अपनी-अपनी मर्जी की बात है।

[१७४]

मुनियों को आहार देना उत्तम धर्म है :-

नीत्ताट्रिन् निन्ट्र निलैयिनोर् उण्डक्काल्
ईत्ताट्रिनारुं उयप्पोवार्–नीत्ताट्रिर्
पेट्रिप्पुणैयन्ना र्पेत्तुंण्णा विट्टक्काल्
एट्रान् उयप्पों उलगु

भावार्थ :–आशा-पाश को त्याग कर अनगार धर्म मार्ग पर चलने वाले जो त्यागिगण है, उन्हें आहार दान देते रहना चाहिए। तभी अपने धर्म मार्ग पर चलने वाले गृहस्थ संसार बन्धन से मुक्त हो सकते हैं। यदि कोई गृहस्थ संसार सागर से पार कराने वाले त्यागियों के अपने घर में आहार दिए बिना वापस भेजेगा तो वह संसार से कैसे पार हो सकता है ?

विशेषार्थ :–गृहस्थ और मुनियों का परस्पर संबंध है। यदि गहस्थ न होंगे तो मुनि लोग रह नहीं सकते। वैसे ही त्यागी गण न होंगे तो गहस्थों को सच्चा रास्ता बताकर पार कराने वाले कोई नहीं है। अतः दोनों को एक तरह से अविनाभावी संबंध है। ऐसी अवस्था में श्रावकों का कर्त्तव्य यह हो जाता है कि मुनिजनों को श्रद्धा भक्ति के साथ आहार दान अवश्य दें। नहीं तो मुनि धर्म भी नहीं रहेगा और श्रावक भी संसार से पार नहीं हो सकता। अतः मुनियों को आहार

दान आदि देना श्रावकों का परम कर्त्तव्य माना जाता है। इस का मतलब यह है कि श्रावक लोगों को अपने कर्त्तव्य से या धर्म से च्युत नहीं होना चाहिए।

[१७५]

मिथ्या साधुओं को आहार दान देने से कोई लाभ नहीं है :-

कोडुत्तुटय प्पोयारु कोलवा ग्गुणत्तिल्
वडुत्तीदार् उण्णि पेरलां-कोडुत्तारेक्
कोण्डुटय प्पोवा गुंडैयार् अल्लादार्
उण्डीत्तु वील्वार् किलक्कु

भावार्थ :-त्याग, सम्मग्ज्ञान निर्मोह आदि गुणों से भरे जो महान त्यागी हैं, वे अपने लिये आहार दान देने वाले को संसार-दुःख से छुड़ाते हैं। और खुद भी छूटते हैं। ऐसे सद्गुणों से रहित जो खोटे साधु हैं वे दूसरों से दिए गए आहार को खाकर, उन लोगों को खींचकर ले जाते हुए नरक में डालते हैं। और खुद भी गिरते है। इसलिए गृहस्थाश्रम मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति, अपने दातृत्व के द्वारा यदि मुक्ति मार्ग को प्राप्त करना चाहते हैं तो निर्दोष गुणों से भरे त्यागियों (मुनियों) को खिलाकर उनसे गुण प्राप्त कर सकते हैं।

विशेषार्थ :-साधु दो तरह के होते हैं। एक सच्चा दूसरा झूठा। सच्चा साधु का लक्षण यह है कि त्याग, तप,

निर्लोभ और सम्यग्ज्ञान आदि गुणों से युक्त हो। दूसरे का लक्षण यह हें कि लोभी, मायाचारी, दंभी और अज्ञानी हो। जो सच्चे साधु होते हैं यदि उन्हें आहार दिया जाय तो, वे मुक्ति का यथार्थ मार्ग बताकर संसार बन्धन से छुड़ाते हैं। यदि खोटे साधु को खिलाते हैं तो उससे पुण्य की बजाय पाप मिलता है और संसार परंपरा बढ़ती हें। अतः सच्चे श्रावकों को चाहिए कि यथार्थ साधुओं को आहार देकर पुण्य का पात्र बनने के साथ-साथ मोक्ष का भी भागी बने।

[१७६]

दान तीन प्रकार के होते है :-

अडंगि् अडंगिनाक्कीदल् तलैये अडंगादु
अडंगिनाकीदल् इडैये-नुडंगिडैयाय् !
एर्पानुं तानुं अडंगाक्काल् अःतेन्ब
तोर्पावै क्कूत्तिनुल् पोर्

भावार्थ :-हे छोटी कमर वाली बालिके, (याने एक बालिका को संबोधन कर बताते हैं) उत्तम दान वह कहलाता है कि मन को, इन्द्रियों की इच्छा से रोके गये मुनि को (पात्र) जो दाता, श्रद्धा भक्ति के साथ आहार दान आदि देता हो। मध्यम दान वह कहलाता है कि-ऊपर कहे गये पात्र को जो दाता श्रद्धा भक्ति के बिना आहार दान आदि देता हो। जघन्य दान वह कहलाता है किन्तु दाता श्रद्धा भक्ति के साथ आहार दान आदि देता है और न पात्र भी मन और इन्द्रियों के विजेता है।

विशेषार्थ :-पात्र दान तीन तरह के होते हैं। उत्तम, मध्यम और जघन्य। (१) उत्तम पात्र दान वह है कि दाता भी श्रद्धा भक्ति के साथ आहार दान आदि देता है और पात्र भी (मुनि) इन्द्रिय और मन के विजेता है। (२) मध्यम पात्र वह है कि पात्र (मुनि) तो मन और इन्द्रिय के विजेता हैं। मगर दाता श्रद्धा भक्ति के साथ आहार दान आदि नहीं देता है। यहाँ पर समझने की बात यह है कि पात्र वही होने पर भी दाता की श्रद्धा भक्ति का अभाव होने से यह मध्यम कहलाया। (३) जघन्य पात्र दान वह है कि न तो पात्र मन और इंद्रियों के विजेता हैं और न दाता को श्रद्धा भक्ति का सुभाव है। अर्थात् पात्र के अन्दर भी गुण नहीं है। दोनों गुण विहीन है। परन्तु दान दिया जाता है। अतः यह जघन्य दान कहलाया। यहाँ समझने की बात यह है कि दान में उत्तम दान ही श्रेष्ठ अतः उसे (उत्तम दान को) श्रद्धालु श्रावक को अपनाना चाहिये। न कि अन्य दान। अन्तिम दान नाटक मंच पर खिलौने के खेल के समान है।

[१७७]

आहार दान ही सबसे श्रेष्ठ दान है :-

बाल्नालुडंबु बलिवनप्पुच्चेल् गतियुं
तूमाण् निनैवोलक्कं काट्टिचयुं-तागण्ड
उण्डि कोदुत्ता न्कोडुत्तलाल् ऊण् कोठैयोड
ओन्ट्रुं कौठं योप्प निल्

भावार्थ :-जिसने श्रेष्ठ आहार दान दिया है, वह आयुष्य, शरीर की ताकत, सुन्दरता, परलोक की सफलता, शुभ चिन्तन, सदाचार और सम्यग्दर्शन आदि सभी को प्राप्त करता है। ये सब उस आहार के जरिये मिलने के कारण भूखे व्यक्ति को अन्न दान देने के बराबर दूसरा कोई दान नहीं है।

विशेषार्थ :-दान चार प्रकार के होते हैं-अन्न, अभय, औषध और शास्त्र। इन सभी दानों में अन्न दान सर्वश्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि इस अन्न दान के कारण मानव को आयुष्य (अन्न से ही मनुष्य जीवित रहता है कहा भी है- अन्नं वै प्राणाः) शरीर की ताकत (खाने से ही शरीर की ताकत है) सुन्दरता- (अन्न के कारण रक्त वृद्धि होती है उसी से शरीर में शोभा आती है) परलोक की सफलता-(अन्न से शरीर का अस्तित्व रहता है। त्यागी लोग अन्न दान मिलने से तप करते हैं और उससे आगामी भव की सफलता प्राप्त करते हैं) शुभ चिन्तन-आहार से मानव के दिल को शांति मिलती है, उस समय वह अपने परिणाम को शुभ रूप में परिणत करता है।) सदाचार-(आहार के कारण त्यागी जीवित रहता है और अपने आचरण को पवित्र बनाता है। उस सकय उक्त सदाचार का कारण आहार ही है।) सद्दर्शन-(कोई व्यक्ति अन्न से जीवित रहकर अपने परिणामों को विशुद्ध करता हुआ सम्यग्दर्शन को भी प्राप्त करता है। उस अवस्था में सम्यग्दर्शन प्राप्ति का कारण आहार ही है।) इस तरह आहार याने अन्न दान कई सत्कार्यों का कारण बनता है। अतः दानों में अन्न दान मुख्य

एवं श्रेष्ठ माना गया हैं। उसके बराबर कोई दान नहीं है। कहा भी है–अन्नदानात्परं नास्ति दानमन्यन्म ही तले। प्राणिनां देह-सन्ताप नाशना त्प्राण धारणात्॥ अर्थात् प्राणियों के देह सन्ताप को नाश करने से और प्राणों को जीवित रखने से अन्न दान के बराबर कोई दान नहीं है।

[१७८]

देनेवाले की अपेक्षा लेनेवाला ही उत्तम दानी है :–

परप्पुनी वैंयकत्तु प्पललुयिर्कट् केललां
इरप्पारि नवललल्कलुं इल्लै-इरप्पर्
इम्मै प्पुगलुं इनिच्चेल् गतिप्पयनुं
तम्मै त्तलैप्पुठुत्त लाल्

भावार्थ–दान लेने वाले, देने वाले को इस भव में ख्याति और परभव के लिये सुख आदि प्रदान करने के कारण, पारावार से घेरे हुए इस संसार में सभी मानवों के अन्दर दान लेने वाले के बराबर दूसरा कोई उत्तम दानी नहीं है।

विशेषार्थ–पहला दान देने वाला, दूसरा दान लेने वाला याने ग्रहण करने वाला इस तरह लोगों में विभाजन किया जाता है। इन दोनों के अन्दर आपस में सम्बन्ध है। यदि देनेवाला हो तो लेने वाला रह सकता है और यदि लेने वाला हो तो देने वाला भी हो सकता है। खास कर लोक व्यवहार में दान देने में दान देने वाले को ऊँचा समझा जाता है। परन्तु यहां पर उसका उलटा बताया गया है।

इस प्रसंग में आचार्य का कथन यह है कि देने वाले को दानी कहते हैं। मगर देने वाले की अपेक्षा लेने वाला भी उत्तम दानी है। क्योंकि दान लेने वाला, देने वाले को दो तरह से उपकार करता है। अर्थात् इस भव में उसे ख्याति प्राप्त होती है और पर भव के लिए सुख-संपत्ति आदि मिल जाती है। समझने की बात यह है कि लेने वाले के कारण देने वाले को दोनों भवों का फायदा हो जाता है। देने वाले ने थोड़ा दिया है और फायदा डबल उठा लिया है। अतः देने वाले की अपेक्षा लेने वाला ही उत्तम दानी है।

यहाँ पर दान की विवक्षा मुनियों की अपेक्षा से है।

[१७९]

धनिक लोगों का कर्त्तव्य :-

सेलवत्तै प्पेट्रा सिनंकडिन्दु सेव्वियरप्प्
पल्किलैयुं वाडाम पत्तिु ण्डु-नल्लवां
दानं मरवाद तन्मैयरेल् अहदेन्बार
वानकत्तु वैप्पदो वैप्पु

भावार्थ :-धनिक लोगों का कर्त्तव्य यह है कि गुस्से को छोड़कर सरलता का व्यवहार करना है। उन धनिकों के जो बन्धु समूह हैं, उन्हें गरीबी से बचाकर अपनी संपत्ति को उन लोगों को भी बांटकर देवें। इस तरह इहं-पर भव के लाभदायक जो धार्मिक कार्य है, उसे बिना भूले करेंगे तो लाभ जरूर है।

इस पर बड़े लोगों का कहना यह हैं कि यह कार्य स्वर्ग में अपने सहायतार्थ रखे गये अनुपम क्षेमनिधि के समान है।

विशेषार्थ :-प्रत्येक व्यक्ति को समझना यह है कि धन अपने उपयोग के लिये हो है। न कि इकट्ठा कर रखने के लिये। जो व्यक्ति अपने उपयोग से ज्यादा धन इकट्ठा कर रखता हैं, उसे चोर समझा जाता है। इसलिए उस पाप से बचने के लिए अपने जैन धर्म के अन्दर 'परिमित परिग्रह अणुव्रत' की व्यवस्था सुन्दर ढंग से की गई है। ज्यादा धन इकठ्ठा करने से मनुष्य को लालच बढ़ती है और उससे संसार बढता है। अत: अपने उपयोग से ज्यादा जो धन है उसे धर्म और दान करने की व्यवस्था की गई है। उसमें अपने बन्धुजनों के प्रति ख्याल रखना बहुत जरूरी है। लोगों में यह अपवाद हो सकता है कि अमुक धनिक के पास काफी धन पड़ा है, लेकिन अपने असमर्थ बन्धुजनों के प्रति ध्यान नहीं देता है और सहायता नहीं करता है। अत: समझने की बात यह है कि अपने बन्धुजनों की सहायता करना यह भी एक तरह से दान है। इससे दो तरह का लाभ होता है। पहला यह है कि इस कार्य से अच्छा नाम मिलता है। और दूसरा यह है कि पुण्य की प्राप्ति अवश्य मेव हो जाती है। अत- धनिक लोगों को चाहिये कि अपने उपयोग से ज्यादा जो धन है उसे बन्धुजनों में बांटकर इह परलोक सुख

को प्राप्ति करें। इस तरह का जो कार्य है वह तो अगले भव के लिए क्षेमनिधि (Fixed Deposit) के समान माना जायगा।

(१८०)

सच्चे दानी को स्वर्ग का द्वार खुला रहता है :-

ओन्ट्राग नल्लदु उयिरोंवल् आंगदन्पिन्
नन्ट्राय न्दडं गना क्कीर्त्ति ुण्डल् एन्ट्रिरण्डुं
कुन्ट्रा प्पुगलो, न्वरुगेन्ट्र, मेलुलगं
निन्ट्रदु बायिल् तिरन्दु

भावार्थ :-सारे जीवों की रक्षा करना उत्तम धर्म है। उसके बाद ज्ञानवर्धक ग्रन्थों को अध्ययन (खोज) कर अपने मन को इन्द्रियों के रास्ते से हटाकर सच्चे रास्ते पर लगाने वाले महात्माओं को आहारदान आदि देना है। तदनन्तर ही भोजन करना है। ऐसे इन दो तरह के महत्वपूर्ण कार्यों को करने वाले जो सज्जन हैं, उनके लिए स्वर्ग अपना किवाड़ खोलकर स्वागत करते हुए बैठा रहता है।

विशेषार्थ :-आचार्य यहाँ पर दो विषयों पर जोर देते हैं। वे हैं-सारे जीवों की रक्षा करना और पंचेन्द्रियों का दमन कर मन को स्वाधीन रखने वाले मुनिराजों को आहार दान देना। इनमें जीव रक्षा को तो सभी लोग सबसे उत्तम धर्म मानते हैं। दूसरा जो मुनियों का आहार दान है वह भी सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि पात्रों को तीन तरह से माना गया है। जैसे उत्तम,

मध्यम और जघन्य। उत्तम पात्र को आहार दान देने से उत्तम भोग भूमि, मध्यम पात्र को आहार दान देने से मध्यम भोग भूमि और जघन्य पात्र को आहार दान देने से जघन्य भोग भूमि की प्राप्ति होती है। दुनियाँ में हर व्यक्ति उत्तम वस्तु को ही प्राप्त करना चाहता है। अतः उत्तम पात्र जो मुनिराज हैं, उन्हें आहार दान देकर उत्तम भोग भूमि का फल प्राप्त करना प्रत्येक विवेकी मनुष्य का कर्त्तव्य माना जायगा।

[१८१]

धर्म रक्षा के लिये शरीर रक्षा की आवश्यकता :-

सोरप्पसिक्कुमेल् सोट्रूदिप्पागन् मट्रु
ईरप्पडिनुं अदुवूरान्-आरक्
कोडुत्तुवुक् कुरै कोल्लल् वेण्डुं अदनाल्
मुडिक्कुं करुमं पल

भावार्थ :-आहार (खुराक) से जीवित रहने वाला जो शरीर रूपी गाड़ी है, उसको चलाने वाला तो आत्मारूपी दिवान है। वह यदि अपार भुभुक्षा से संतप्त रहेगा तो उसे तलवार से काटने पर भी कोई भी काम नहीं करेगा। हमें उस शरीर से होने वाले कार्य बहुत से हैं। अतः उसे कार्य करने योग्य स्थिति पर रखना आवश्यक हैं। और उसे यथा योग्य खाना खिलाकर अपने कार्य की पूर्ति करा लेना भी अत्यावश्यक है।

विशेषार्थ :-आत्मा सभी प्रकार से समर्थ होने पर भी शरीर के बिना उसका कार्य कुछ भी नहीं चल सकता।

उदाहरण के लिये देखिये—कर्मों को काटने वाला आत्मा ही है। फिर भी शरीर के बिना उसका कार्य कुछ भी नहीं चल सकता। आत्मा सारे शुभाऽशुभ कर्मो को शरीर के द्वारा ही कमाता है और काटता है। अतः आत्मा के सभी कार्य के लिये शरीर की स्थिति अनिवार्य है। शरीर की स्थिति तो अन्न के बिना नहीं हो सकती। अतः उस शरीर के अस्तित्व के लिये खाना खिलाना जरूरी है। वह कार्य तो एक प्रकार से धार्मिक कार्य ही माना जायगा।

१८२]

दान के समान परलोक हितकारी वस्तु कोई नहीं है :-

ईवारिन् इल्लै उलोबर उलग त्तिल्
यावरु कोल्लाद वारेण्णि-मेवरिय
मट्ट्रुडंबु कोल्लुं पोलुतोर्न्दु तम्मुडैमै
पट्ट्रु विडुतल् इलर्

भावार्थ :-दान के माहात्मय से अपनी संपत्ति बिना चोरी के सुरक्षित रहती है। और पर भव के लिये अपार संपत्ति प्राप्त होती है। इस बात को अच्छी तरह जानने वाले बुद्धिमान लोग धन की लालसा को छोड़कर भरपूर दान देते हैं। तथा याचकों की इच्छा पूर्ति करते हैं। अतः ऐसे धर्मात्माओं को छोड़कर समझदार और कोई नहीं हो सकते।

विशेषार्थ :-दान करने वाले महात्माओं का धन दान में लगता है। धन दान में लग जाने के कारण उसकी चोरी नहीं

हो पाती, यानी चोरी से बच जाती है। दान करने से अपार पुण्य की प्राप्ति होती है, जिससे पर भव में उक्त दानी को अपरिमित संपत्ति मिल जाती है। उससे प्राप्त सुख सामग्री के कारण वह व्यक्ति आनन्द के साथ भोग भोगता है। अतः ज्ञानियों को चाहिये कि यदि चोरी से धन की रक्षा करनी है और पर भव में सुख संपत्ति को प्राप्त करना है तो अवश्य दान करें।

[१८३]

लोभी का धन गुण्डों के हाथ में जायेगा :-

इट्टक्कङ् त्तरार् ईण्डु पलिमरी इप्
पट्ट वलगाद पान्मैयार् नट्ट
सुरिकैया कानुं सुलाक्कोला कानुं
सोरिवदां आपो सुरिन्दु

भावार्थ :-जैसे गाय जबर्दस्ती से दुहने वाले को दूध देती है, वैसे ही लोभी व्यक्ति अपने पास की धन संपत्ति को घने दोस्त और गरीबों को न देकर तलवार या लकड़ी से मारनेवाले डाकुओं को ही दे डालता है।

विशेषार्थ :-धन का सदुपयोग दान है। कुछ लोग लोभ के कारण धन सपत्ति को हमेशा इकट्ठा ही करते रहते हैं। किसी को एक पैसा भी नहीं देते। खुद ठीक तरह से खाते-पीते भी नहीं है। ऐसे लोभी का धन आखिर गला घोंटकर ले जाने वाले चोरों के हाथ में ही जाता है।

[१८४]

ज्ञानधन की लेन देन :–

कोडुप्पान पसैसान्र्दु कोल्वान् गुणत्तिल्
कोडुक्क प्पुडुदल् अमैयिन्–अडुत्ताडत्तु च्
सेन्ट्रा ङ्गडन्दु कलैबिनै येन्बरे
वेन्ट्रा विलंग विरित्त

भावार्थ :–जैसे कोई महान शिक्षक अपने शिक्षार्थी की योग्यता पहचान कर शिक्षा देते हैं तो शिक्षार्थी प्रेम से पढ़ने जाते हैं। वैसे ही इन्द्रियजयी मुनिवृन्द, संसार विरक्त अपने भक्तों की योग्यता को पहचान आदेश करते हैं कि जन्म सन्तति के कारणभूत कर्मों को जीतना अत्यावश्यक है।

विशेषार्थ :–शिक्षक और शिक्षार्थी इन दोनों का घनिष्ट सबन्ध रहता है। शिक्षक का शिक्षण शिक्षार्थी की योग्यता के अनुकूल रहता है तो शिक्षार्थी शिक्षक के प्रति प्रेम भाव दिखाता है और शिक्षण को चालू रखता है। वैसे ही इन्द्रिय विजयी त्यागीगण संसार से भयभीत भक्तजनों को बार-बार यही उपदेश देते हैं कि भवभ्रमण को विनाश करना है तो उसके कारणभूत कर्मो को काटना है। इस तरह के हित-मित प्रिय वचनों से आकृष्ट भक्तगण गुरु (मुनि) चरण सेवी बने रहते हैं।

[१८५]

दान देनेवाले और लेनेवाले के अभाव में सर्वनाश है :-

कोडुप्पान् विनैयल्लन् कोलवानुं अल्लन्
कोडक्कप्पडं पोरुलुं अन्ट्राल-अडुत्ताडुत्तु
नल्लवै यादा कोल् नाडि युरैयाय् नी
नल्लवर् नाप्पण् नयन्दु

भावार्थ :-यदि तुम दुनियां की भलाई को चाहने वाले हो तो जरा सोचकर बताना कि संसार में दानी कृपण रहें, दान लेनेवाला (दरिद्र) भी न रहे, दान देने योग्य धन भी पड़ा रहे तो सज्जनों से होने वाला सत्कार्य कैसे होगा ? कदापि नहीं।

विशेषार्थ :-दुनियाँ में तीन तरह के कार्य हुआ करते हैं। एक समर्थ व्यक्ति दान देता है, दूसरा दान लेता है; इन दोनों में वस्तुओं का परिवर्तन होता है। सोचने की बात यह है कि यदि दान देनेवाला मौजूद होने पर भी, लेनेवाला कोई भी न हो तो दान का कार्य रुक जाता है। ऐसी अवस्था में दान का अभाव होने से उससे होनेवाले पुण्य का भी अभाव होता है। इससे यों कहना चाहिए कि संसार में होने वाले सारे सत्कार्यों का ही अभाव हो जाता है। अतः दानी भी हों दान लेनेवाला भी हो, और दान क्रियारूपी सत्कार्य भी हों, तभी दुनियाँ की निर्याति बराबर होती रहेंगी।

[१८६]

सम्यग्ज्ञान का कार्य :–

अरिवु मिक प्पेरुक्कि आंगारं नोक्किप्
पोरियैन्दु वेल्लुंवाय् पोट्रिच्–सेरिविनान्
मन्नुयिरोम्बुं तकैत्तोकाण् नन्ज्ञानन्
तन्नै उयक्कोल्वदु

भावार्थ :-सम्यग्ज्ञान का कार्य यह है कि अपने शरण पर आये हुए व्यक्ति को अत्यधिक ज्ञानवृद्धि कराते हुए उसके अहंकार को हटा देता है। पंचेन्द्रियों को जीतने का मार्ग बतलाता है। साधुजनों को दुःखों से बचाता है। यही उसके महत्वपूर्ण कार्य हैं।

विशेषार्थ :–ज्ञान दो तरह के होते हैं। पहला सम्यग्ज्ञान दूसरा मिथ्याज्ञान। आचार्य देव सम्यग्ज्ञान का वर्णन करते हैं। उस सम्यग्ज्ञान का कार्य यह है कि जिसको सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, वह व्यक्ति ज्ञान वृद्धि कर लेता है।उसका अहंकार छूट जाता है। पचेन्द्रियों को जीत लेता है। दुःखों से बच जाता है। बस, इससे बढ़कर संसार के मनुष्यों को और क्या प्राप्त होना चाहिए ? इसका मतलब यह है कि वह संसार के दुःखों से छूटकर अविनाशी अनन्त सुखों को प्राप्त कर लेता है।

[१८७]

असाध्य कार्यों को करना ही महत्व है :-

सोरि यारुं उण्णारो ? सोल्लियारु ञ्चोल्लारो ?
एरियारुं वैयत्तुल् एरारो ?-तेरि
उरियदोर् ज्ञानङ् कट्टुल्लन्तिरुन्दि
अरिय तुणिवरां माणबु

भावार्थ -चावल खाना, कोरी बातें बनाना, सवारी पर चढ़कर जाना इन कार्यों को तो संसार के सारे लोग करते हैं। पढ़ने योग्य अध्यात्म शास्त्रों को पढ़कर सच्चा ज्ञान प्राप्त करना, मन की लालसा को हटाकर साधारण लोगों से विशिष्ट कार्यों को करना और मुक्ति पाने के प्रयत्न में रहना ये ही महत्व के हैं।

विशेषार्थ :-मनुष्य दो तरह के होते हैं—एक साधारण दूसरा विशिष्ट। साधारण लोगों का कार्य यह हुआ करता है कि खाना पीना और मौज उड़ाना। विशिष्ट लोग आध्यात्मिक तत्वों को मननकर सांसारिक वासना से अलग होने के साथ-साथ मोक्ष प्राप्ति के आचरण में हमेशा तत्पर रहते हैं। विशिष्ट लोगों के ये कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

[१८८]

एक ही वस्तु स्थान परिवर्तन के कारण ऊँच-नीचता को प्राप्त करता है :-

पांबुण्ड नीरेल्लां नञ्चां पसुवुण्ड
तेंपडु तेण्णीर् अमुढमां-ओंबकुं
ओलियां उयन्दार्कण् ज्ञान अदुपोर्
कलियां कडैयाया मट्टु

भावार्थ :-जैसे सर्पों से पीया हुआ पानी जहर बनता है वैसे ही नीच लोगों से अध्ययन किया हुआ आध्यात्मिक शास्त्र भी ममता का कारण बन जाता है। जैसे गायों से पीया हुआ पानी अमृत बनकर हित कर बनता है, वैसे ही उत्तम पुरुषों से अध्ययन किया हुआ आध्यात्मिक शास्त्र आत्म हितकारी बनता है।

विशेषार्थ :-मनुष्य दो तरह के होते हैं ऊँच और नीच। जो व्यक्ति ऊँच याने उत्तम होता है वह हमेशा गुणो को ही ग्रहण करता है, न कि दोषों को। जो व्यक्ति नीच याने अधम होता है वह दोषों को ही ग्रहण करता है न कि गुणों को। शास्त्र उत्तम से उत्तम होने पर भी जो नीच होगा, वह अपने अवगुण के अनुसार उसके अर्थ को अदल-बदलकर विपरीत रूप में समझेगा और दूसरों को भी उसी रूप में समझायेंगा। जो व्यक्ति उत्तम होगा वह उत्तम शास्त्रों को यथार्थ रूप में समझेगा

और दूसरों को भी उसी रूप में समझायेगा। जैसे सांप से पिया हुआ पानी जहर बनकर दूसरों को अहितकारी बनता हैं और गाय से पिया हुआ पानी अमृत बनकर हितकारी बनता है। वैसे ही पानी के समान शास्त्र उत्तम होने पर भी ऊँच और नीच के संपर्क से यथार्थ और विपरीत अर्थ लगाने का कारण होकर निर्दोष एवं सदोष बन जाता है। अर्थात् ऊँच याने उत्तम व्यक्ति निर्दोष अर्थ लगाता है और नीच याने अधम व्यक्ति सदोष अर्थ लगाता है। अतः लोगों को चाहिए कि अधम के उपदेश और व्याख्या तथा शास्त्र प्रवचन न सुनें और उत्तम पुरुष के उपदेश, व्याख्या और शास्त्र प्रवचन सुनें। जिससे आत्म कल्याण होगा और मोक्ष का पात्र बनेगा।

[१८६]

सत् शास्त्र का अध्ययन हमेशा करते रहना चाहिए :-

केडुक्क प्पडुवदु तीक्करुमं नालुं
कोडुक्क प्पडुवदु अरुले-अडुत्ताडुत्तु
उण्ण प्पडुवदु नन्डानं एप्पोलुदुं
एण्ण प्पडुवदु वीडु

भावार्थ :- हमेशा अशुभ कर्मों को नाश करना चाहिए। अलावा इसके अन्य लोगों पर दया दिखानी चाहिए। अन्त में सच्चे आध्यात्मिक शास्त्रों का मनन ही मुक्ति का मार्ग है।

विशेषार्थ :-मानवों को दो तरह से कर्मों का आस्त्रव होता है। एक शुभ कर्म दूसरा अशुभ कर्म। शुभ परिणाम से

शुभ कर्म का आस्त्रव होता है और अशुभ परिणाम से अशुभ कर्म का। शुभ कर्म याने (सातिशय पुण्य) परंपरा से मोक्ष का कारण बनता है। और अशुभ कर्म निरंतर संसार का कारण बन जाता है। अन्य जीवों पर दया दिखाना, उपकार करना, दूसरों को दुःख मत देना, प्रेम दिखाना, पर द्रव्य अपहरण न करना आदि कार्यों से शुभ कर्म याने पुण्य कर्म मिलता है। इसके विपरीत कार्यों से अशुभ कर्म याने पाप आता है। संसारी जीवों को अशुभ कर्मों से बचकर शुभ कर्मों का संपादन करना चाहिये। अन्त में संसार से विरक्त होकर आध्यात्मिक शास्त्रों का अध्ययन करें तथा चारित्र का पालन करते हुए मोक्ष की प्राप्ति करें।

[१९०]

मुक्ति पानेवाले का कर्त्तव्य :-

इन्दिय क्कुंजरत्तै ज्ञान इरुंकयिट्राल्
सिन्दनै त्तूण् पूट्टि च्चेर्त्तिये-वन्दिप्पर
इम्मै प्पुगलुं इनिच्चेल् गति प्पयनुं
तम्मै त्तालै प्पडुत्तुवार्

भावार्थ :-इस भव में कीर्ति और पर भव म मुक्ति इनको पाने की इच्छा रखने वाले भव्य पुरुषों को चाहिए कि पांचों इन्द्रियरूपी मत्त गजों को मनरूपी खभे में ज्ञानरूपी रस्सी के द्वारा बांध देना आवश्यक है।

विशेषार्थ :-मानवों को बिगाड़ने वाले इन्द्रिय ही हैं। वे मत्त गज के समान मनमाने चलते हैं। उन्हें काबू में लाना आवश्यक है। वह काम मन से ही हो सकता है। जैसे हाथी को काबू में लाने के लिये रस्सो से खम्भे में बाँधा जाता है। वैसे ही इन्द्रियरूपी हाथियों को ज्ञानरूपी रस्सी के द्वारा मनरूपी खभे में बांध लें तो उन्हें (उन महान व्यक्तियों को) इस भव में अच्छा नाम और पर भव में मुक्ति अवश्यमेव मिल जायगी।

[१९१]

संसार रोग को नाश करने का उपाय :-

उणर्च्चि यच्चाग उसा वण्डियागप्
पुणर्च्चि प्पुलनैन्दुं पूट्टि-उणर्न्ददनै
ऊगिन्ट्र पागन उणर्वुडैय नागुमेल्
पेर्किन्ट्र दागुं पिरप्पु

भावार्थ :-खोज करने रूपी गाड़ी में बुद्धिरूपी पहिये को लगाकर, पांचों इन्द्रियरूपी घोड़ों को बांधते हुए चलाने के ढंग से चलाने वाला जीवरूपी सारथी, बुद्धिमान होगा तो वह संसार रोगों से मुक्त हो सकता है।

विशषार्थ :-जैसे कोई सारथी गाड़ी में पहिये का लोहा लगाकर घोड़ को बांधता है और ठीक तरह से चलाकर जाने के स्थान पर यथासमय पहुँचता है। वैसे ही जीव का काम यह है कि बुद्धि के द्वारा खोज के साथ विचार करना है और पांचों

इन्द्रियों का उचित रूपी से दमन भी करना है। तभी जीव संसार रोग से मुक्त होकर मुक्ति को पा सकता है।

[१२]

जन्म संतति को खत्म करना ही बुद्धिमत्ता है :-

तरुकण् तरुकट्पं तन्नैत्तान्नोवल्
उरुति क्कुरुति उयिरोम्बि वाल्तल्
अरिविर् करिवाव तेण्णिन् मरुपिरप्पु
मट्रीण्डु वारा नेरि

भावार्थ :-निडरों में निडरपना वही है कि अपनी गलती को देखकर पश्चात्ताप करना, अच्छे में अच्छापन वही है कि अन्य जीवों की रक्षा करना, बुद्धिमत्ताओं में बुद्धिमत्ता वही है कि संसार में फिर से जन्म लेने की जरूरत न पड़े ऐसे सच्चारित्र का पालन करना, ये सब उच्च विचार धारा के निष्कर्ष हैं।

विशेषार्थ :-मनुष्य के अन्दर विचार करने की विशेष शक्ति मौजूद रहती है। उसका उपयोग करना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। मगर मानव के अन्दर तीन तरह की कमियां रहती हैं। (१) अपनी गलती को छिपाना। (२) अन्य जीवों पर लापरवाही। (३) जन्म सन्तति से छुटकारा पाने योग्य चारित्र पर अनाशक्ति। इन कारणों से उसे छुटकारा नहीं मिलता। अतः मनुष्य का परम कर्त्तव्य यही है कि अपनी गलती पर पछताना और उसे सुधारना। अन्य जीवों पर दया दिखाना

और रक्षा करना। जन्म परंपरा से छुटकारा पाने योग्य सच्चारित्र का पालन करना। ये ही मनुष्य के उद्धार का मार्ग हैं।

[१९३]

मोक्ष पाने का मार्ग :-

उयिर्वित्ति ऊन्विलैत्तु क्कूट्रुण्णु वालकैच्
सेयिवित्तिच् सीलत्ति न्टेन्न ? सेयिरिनै
मार्ट्रि मरुमै पुरिकिन्ट्र पिन् काणलाङ्
कूट्रङ् कुरुगा इड

भावार्थ :-मनुष्य जीवरूपी बीज को बोकर काय (शरीर) रूपी धान्य तैयार करता है। मगर उस धान्य को यमराज बीच में खा डालता है। फिर भी मनुष्य उस पर विश्वास करता है और बुराई को जन्म देता है। यदि सच्चारित्र रूपी बीज को बोये बिना उसे खा जाय तो उससे क्या फायदा ? इसलिए करना यह है कि अशुभ कर्म को हटाकर परभव सुख के कारण भूत धर्म कार्य करें और यमराज के अभाव रूप मुक्ति को प्राप्त करें।

विशेषार्थ :-किसान बीज को बोकर धान्य पैदा करता है। मगर उस धान्य को चिड़ियाँ बीच में खा डाले तो उसका परिश्रम जैसे विफल हो जाता है. बस उसी तरह मानवरूपी किसान जीवरूपी बीज को बोकर कायरूपी धान्य तैयार करता

है। मगर उसका फल उस किसान को न मिले और बीच में यमराज रूपी चिड़िया खा डाले तो कैसी निराशा होगी? इसका अन्दाज कर देखें। परन्तु ऐसी निराशा की हालत में भी मनुष्य उसी पर विश्वास करता है और बुराई को बार-बार करता ही रहता है। वास्तव में मनुष्य को करना यह है कि उत्तम चारित्र रूपी बीज को अवश्य बोवें और उससे मिलने वाला मोक्षरूपी जो फल है उसे अवश्य प्राप्त करें।

[१६४]

सदाचार ही मोक्ष का बीज है :-

इरुले उलगत्रियकें इरुलकट्रु
कैविलक्के कट्र अरिवुडैमै-कैविलक्किन्
नेय्यैतन् नेङ्ज त्तरुलुडैमें नेय्पयन्द
पालपोल् ओलुक्कत्तवरे परिविल्ला
मेलुलगं एय्दु पवर्

भावार्थ :-यह संसार अज्ञानरूपी अन्धकार से भरा हुआ है। जो व्यक्ति ज्ञान को बढ़ाने वाले शास्त्र का अध्ययन करता है उसका कर्त्तव्य यह है कि उस ज्ञानरूपी दीपक के द्वारा अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करें और ज्ञानरूपी दीपक को जलाए रखने के लिए दयारूपी घी को बराबर डालते रहें। इसके अलावा उसका और भी करना यह है कि दयारूपो घी के कारणभूत सदाचाररूपी दूध को हमेशा पीते रहें जिससे मोक्ष की प्राप्ति अवश्यमेव हो जाय।

विशेषार्थ :–जो व्यक्ति ज्ञानवान, दयावान और चारित्र-वान होगा उसी को मोक्ष की प्राप्ति होगी। और अन्य व्यक्ति को कदापि नहीं। अर्थात् मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति चाहता है तो उसको चाहिए कि दया सम्यग्ज्ञान और सच्चारित्र का पालन अवश्य करें।

[१९५]

मुक्ति पाने का मार्ग :–

आर्वमुं सेट्रमुं नीक्कि अडंगुदल्
सीर्पेट्र् बीट्टु नेरियेन्बर्–नीर्पुगप्
पट्टिमै पुक्कान् अडगिनन् एन्बदु
केट्टा र्वलि वियक्कुमार्

भावार्थ :–बुद्धिमानों का कहना यह है कि काम और क्रोध को हटाकर मन वचन काय से दुष्कार्य कदापि न करना ही मुक्ति पाने का मार्ग है। दुराचार की प्रशंसा करना, सन्मार्ग पर न जाकर इन्द्रिय विषयों में डूब जाना और ढ़ोंगी साधु बन जाना सच्चा मार्ग नहीं है।

विशेषार्थ :–मोक्ष पाने का मार्ग यह है कि काम, क्रोध, मद, मात्सर्यादि को सर्वथा त्याग करना है, और इन्द्रियों को दमनकर दुराचार से बचना है। इस तरह से सदाचार को छोड़कर केवल ढोंगी साधु बनकर विचरने से कोई फायदा नहीं है।

[१९६]

इच्छा विरोध से मुक्ति की प्राप्ति होती है :–

अरुलाल् अरं वलरुं आल् विनैयाल् आक्कं
पोरुलाल् पोरुल् वलरुं नालुं तेरुला
विलैविन्बत्ताल् वलरुं काम्म क्काम
विलैविन्मैयाल् वलरु वीड्

भावार्थ :–त्रस्त जीवों पर दया करने से धर्म वृद्धि होती है। सतत प्रयत्न करने से भोग-सुख मिलता है। धन से धन मिलता है। मूर्च्छा को बढ़ाने वाली इन्द्रिय सुख से(बांछा बढ़ती है। उस बांछा को त्यागने से मुक्ति मिलती है।

विशेषार्थ :–यहां पर चार तरह के पुरुषार्थ का वर्णन किया गया है। वे पुरुषार्थ ये हैं कि–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म दया से होता है। अर्थ प्रयत्न से मिलता है। उस अर्थ के कारण काम याने इन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है। इन्द्रिय सुख की लालसा को त्यागने से मोक्ष को प्राप्ति होती है। अतः चारों पुरुषार्थ को अविरोध रूप से करना है। चौथा जो उत्तम पुरुषार्थ है, वही अन्तिम याने असली पुरुषार्थ है। उसके बाद कोई भी पुरुषार्थ करने की आवश्यकता नही पड़ेगी। अतः चौथे मोक्ष पुरुषार्थ को करने से न चूकें।

[१६७]

मुक्ति के विषयों को सुनना ही श्रेयस्कर है :-

पण्णमै याल् कुलल् गीत मेंन्ट्रिन्नवै
नण्णि नयप्प सेवियल्ल-तिण्णिदिन्
वेट्टेनच्चन्नोक्कि विण्णिन्बं वीट्टोड,
कट्टुरै केट्प सेवि

भावार्थ :-कुछ लोग मधुरमय राग से मिली हुई वीणा, वंशी और गाना आदि को सुनने के लिये दौड़ते हैं और प्रेम से सुनकर आनन्द मनाते हैं। ऐसे लोगों के कान. कान नहीं है बल्कि आकार मात्र है। वास्तव में करना यह है कि कोई व्यक्ति अप्रिय वचन कहें तो उसे अनसुनी करके दृढ़ता के साथ त्याग कर प्रेम करने के साथ-साथ मोक्ष प्राप्ति के योग्य उत्तम वचनों को सुनना ही श्रोत्र का लाभ है।

विशेषार्थ :-लोगों की रुचि शृंगार रस की ओर दौड़ती है। लोग मधुरमय संगीत और वीणा आदि को सुनकर आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं। वास्तव में देखा जाय कि जिससे आत्मा का आनन्द होता है, वही सच्चा और यथार्थ आनन्द है, बल्कि इन्द्रियों का नहीं। अतः मानवों को चाहिए कि श्रोत्रेन्द्रिय को तृप्त कर झूंठा आनंन्द प्राप्त करने की बजाय त्याग से प्राप्त होनेवाली मोक्ष प्राप्ति के योग्य सद्वचनों को सुनना ही श्रोत्रेन्द्रिय का महत्व है।

[१९८]

धार्मिक वचनों को सुनना ही श्रोत्रेन्द्रिय का महत्व है :-

पुण्णाग प्पोलन्दु पुलाल्पलिप्प त्तां वलन्दुं
वण्णप्पूण् पेय्व सेवियल्ल–नुण्णूल्
अरकुरै केट्टुणन्दुं अञ्ञान नीक्कि
मरुवरै विट्ट सेवि

भावार्थ :–छोटेपन में कानों को छेदने से घाव हो जाता है। उससे दुर्गन्ध निकलता है। लोग उसे देखकर घृणा करते हैं। वह ठीक होकर जब बच्चा या बच्ची बढ़ जाते हैं, तब उनके कानों में कुण्डल आदि पहनाकर शोभा बढ़ाते हैं और खुशी मनाते हैं। मगर आंचार्य का कहना यह है कि अलंकार के कान, कान नहीं हैं। जो आध्यात्मिक सिद्धांतों को सुनकर उनके रहस्य को खोजने के साथ-साथ पाप के कारणभूत दुर्वचनों को न सुनें, वे ही वास्तव में कान हैं और उसी से श्रोत्रेन्द्रिय का गौरव है।

विशेषार्थ :–इन्द्रिय अच्छे और बुरे इन दोनों कामों में आते हैं। जैसे उसको उपयोग में लाया जाता है वैसे ही उसकी कार्य प्रणाली रहती है। नरक आदि दुर्गति में जाने का जो इन्द्रिय कारण बनते हैं, वे ही स्वर्ग और मोक्ष के भी कारण हैं। अतः इन्द्रियों में जो श्रोत्रेन्द्रिय हैं उन्हें केवल अलकार एवं पापवचन सुनने के कार्य में उपयोग न करें बल्कि अहिंसामय आध्यात्मिक शास्त्रों के सद्वचनों को सुनने में ही उपयोग किया करें। तभी श्रोत्रेन्द्रिय पाने के महत्व हैं।

[१९९]

धर्मशास्त्र को सुननेवाले कान ही सुन्दर कान हैं :-

कण्डव् कामुरूउङ् कामरुसी कीत्तिर्
कुण्डल पेय्व सेवियल्ल--कोण्डुलगिल्
मून्ट्रं उणर्न्देवट्रिन् मुन्नदु मुट्टिन्ट्रिच्
मून्ट्र सुवैप्प सेवि

भावार्थ :--देखनेवालों की सुन्दरता के लिये कुण्डल लगाने वाले कान, कान नहीं हैं। बल्कि धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को बतलाने वाले शास्त्रों को सुनना है। और उनमें से जो धर्म शास्त्र है उसे समझना है, बस इस तरह के सत्कार्य के कारण-भूत कान ही सुन्दर कान समझें जायेंगे। बाकी नहीं।

विशेषार्थ :-दुनियां में खूबसूरत का पसन्द करते हैं और उसके लिए कानों में कुण्डल लगाकर शोभा बढ़ाते हैं। विज्ञ लोगों का कहना यह है कि कान सुनने का उपकरण है न कि अलंकार का। अतः कानों से धर्म शास्त्र का श्रवण करें और उसके महत्व को समझकर लाभ उठावें। इसी में कानों का महत्व है। न कि अलंकार में।

[२००]

जिनेन्द्र भगवान की विभूतियों को देखने वाली आंखें ही श्रेष्ठ आंखें हैं :-

पोरुलेन प्पोल्न्दगन्ट्र पोन्गणिपो न्ट्रेगुं
इरुलर वकाण्पन कण्णल्ल--मरुलरप्

पोट्रकाट्टिच नीक्कि प्पोरुवदु मुक्कुडैयान्
नर्काट्टिच काण्बन कण्

भावार्थ :–नील रत्नों के समान सारी जगहों को साफ-साफ देखनेवाली आँखें, आँख नहीं हैं। बल्कि क्रोध, मान, माया और लोभ से विमुक्त होकर मिथ्यात्व के अभाव में उपमातीत छत्रत्रयधारी भगवान जिनेन्द्र देव के स्वरूप को देखनेवाली आँखें ही आंखें हैं।

विशेषार्थ :–अवयवों में आँख की प्रधानता है। शास्त्रकारों का कहना यह है कि 'सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं' अर्थात् सारे इन्द्रियों में नयन प्रधान है। ऐसे नयन नील रत्न के समान साफ-साफ होने पर भी उनका उपयोग यदि बुरी चीजों को देखने के काम में आवें तो उनसे कोई फायदा नहीं है। लेकिन उनका महत्व तभी माना जायेगा जब वे क्रोधादिक के अभाव में मिथ्यात्व रहित होकर अनर्घ्य छत्रत्रय से विराजमान भगवान जिनेन्द्र देव के मनोहर विभूतियों को देखने का सौभाग्य मिले।

[२०१]

जिन पादपद्म की सुगन्धि को सूंघने से ही नाक का महत्व होता है :–

सान्दुं पुगेयुं तुरुक्कमुं कुंकुममुं
मोन्दिन्पुरुवन मूक्कल्ल--वेन्दिन

अलंगु सिंगादन त्तण्णल् अडिक्कील्
इलंगिदल् मोप्पदा मूक्कु

भावार्थ :–चन्दन, कस्तूरी और केसर आदि की सुगन्धि को सूंघने से नाक का महत्व नहीं होता। बल्कि ऊँचे सिंहासन पर शोभायमान भगवान जिनेन्द्र देव के चरणों में रखे गये फूलों की सुगन्धि को सूंघने से ही नाक का महत्व होता है।

विशेषार्थ :–पचेंन्द्रियों में घ्राणेन्द्रिय भी एक है। उसका कार्य गन्ध को सूंघना है। उससे सुगन्ध और दुर्गन्ध का परिचय होता है। स्वभाव से सांसारिक लोगों की लालसा सुगन्ध के ऊपर है। वे लोग चन्दन, कस्तूरी, केसर और सेंट आदि के सुगन्ध को सूंघकर मजा लेते हैं और वाह-वाह करने लगते हैं। आचार्य का कहना यह है कि इस तरह के वाह-बाह से इन्द्रिय की तृप्ति नहीं होती और वह संतुष्ट नहीं होता। बल्कि लालसा और बढ़ती है। अतः इन्द्रिय और आत्मा दोनों, तृप्ति को प्राप्त करने योग्य जो सर्वोपरि कार्य है उसे करना है। तभी उसका महत्व समझा जायगा। वह कार्य यह है कि जिनेन्द्र भगवान के चरणों में गुलाब और चमेली आदि सुगन्धित फूल चढ़ाई जाती हैं। उन फूलों की सुगन्ध को सूंघने से आत्मतृप्ति होती हैं और उससे वह व्यक्ति पुण्य का भी भागी बनता है। इसका खास मतलब यह है कि गुलाब, पारिजात आदि सुगन्ध-मय फूलों का अपने इन्द्रिय तृप्ति के वास्ते उपयोग न करके भगवान के चरणों पर चढ़ाकर आनन्द प्राप्त करना है जिससे

घ्राणेन्द्रिय की तृप्ति होने के साथ-साथ आत्मतृप्ति भी हो जाती है।

[२०२]

जिन चरणों के महत्व को गाना ही जीभ का महत्व है :-

कैप्पन कार्पु त्तुवर्प्पु प्पुलिमदुरं
उप्परद ङ्कोलवन नावल्ल--तप्पामल्
वेन्ट्रव न्सेवडियै वेट्टुवन्दे प्पोलुदुं
निन्ट्रु तुदिप्पदां ना

भावार्थ :--कडुआ, खारा, मीठा और खट्ठा आदि षड् रसों के स्वाद को चखाना मात्र जीभ का काम नहीं है। बल्कि काम, क्रोध, मान, माया और लोभ को जीते हुए अरहन्त परमात्मा के चरण युगलों को हमेशा भक्ति भाव के साथ भजन करना ही जीभ का महत्व है।

विशेषार्थ :--रसों में षड् रस माना गया है। उनके स्वाद को चखाने में ही लोग अपने समय को बरबाद करते हैं। हर स्वाद का अनुभव कंठ तक ही रहता है। चाहें मीठा हो या खारा। कंठ के नीचे चले जाने पर उसका कोई महत्व नहीं है। सभी एक समान हैं। अत्यन्त स्वादिष्ट पदार्थों को खाकर पेट भरने पर भी उससे आत्मा का कोई लाभ नहीं होता। आखिर वह मल बन जाता है। शायद शरीर मजबूत बन सकता है। शरीर को कितना भी मजबूत बनावें तो भी वह चिरस्थायी

रहने वाली चीज नहीं है। बल्कि उसका अन्त हर समय बन्धा हुआ है। अतः ऐसे नाश होनेवाली चीजों के पीछे अपना समय बरबाद न कर सारे संसारी जीवों को हित पहुंचाने वाले अरहंत देवों के चरणद्रव्यों का गुणगान कर अपने इन्द्रिय और समय का सदुपयोग करना ही सत्पुरुषों का कर्त्तव्य है। इसी में भला है।

(२०३)

सम्यग्ज्ञान प्राप्ति के लिए चलना ही पैरों का महत्व है :–

कोलवदूउङ् कल्वदूउम् अन्ट्रि पिरर्म नैयिर्
सेलवदूउञ् सेय्वन कालल्ल–तोल्लैप्
पिरवि तणिक्कुं पेरुन्तवर् पार्चेन्ट्र
अरवूरै केट्पित्प काल्

भावार्थ :–जीवहिंसा, दूसरों की चीजों को चुराना आदि दुष्कार्यों के लिए और पर स्त्री के साथ संभोग करने के लिए जो पैर जाते हैं, उनका कोई महत्व नहीं है परन्तु जो महान तपस्वी अनवरत दुःख देनेवाले जन्मरोग को विनाश करते हैं, ऐसे मुनिराजों के पास जाकर उनके सारभूत धर्मोपदेश सुनने के लिए सहायक बनने वाले चरणों को ही श्रेष्ठ समझना है।

विज्ञेषार्थ :–प्राचार्यवर्य यहां पर पैरों का सदुपयोग बतलाते हैं। मनुष्यों के अवयवों में पैर भी एक है। उन्हें अच्छे और बुरे दोनो तरह के कामों में उपयोग कर सकते हैं।

दुराचारी उन्हें बुरे कार्यों में उपयोग करता है। जैसे हिंसा, चोरी और परदार सेवा आदि। मगर जो सदाचारी होते हैं, वे संसार परपरा को नाश करने वाली अमृतमयी वाणी को सुनने के लिए मुनिराजों के पास जाते हैं। और धर्म श्रवण कर जन्म सफल करते हैं। इसमें हमें सोचने की बात यह है कि सत्कार्य में उपयुक्त चरणों की महत्ता कहे बिना स्वत: मालूम हो जाती है। इसलिये मनुष्यों को चाहिए कि अपने अवयवों को सत्कार्य में ही उपयुक्त कर जन्म सफल करें तथा दुष्कार्य को त्याग करने का प्रयत्न करें।

[२०४]

जिन भगवान के चरणों पर नमन करने वाला मस्तक ही श्रेष्ठ है :–

कुट्रं कुरैत्तु क्कुरैविन्ट्रि मूकुलकिन्
अट्र मरैत्तांगु अरुल्परप्पि–मुट्र
उणर्न्दानै प्पाडाद नावल्ल अल्ल
सिरन्दान्ट्रान् सेरा तर्ल

भावार्थ :–क्रोध, मान, माया, और लोभ को विनाश करने वाले, तीनों लोक में रहने वाले भव्य जीवों के भय को हटाने वाले और करुणामय अहिंसा का उपदेश देनेवाले जो सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर हैं उनके बारे में गुणगान न करने वाला मुख (जिह्वा) वास्तव मे मुख नहीं है। और उनके चरणों मे नमन न करने वाला मस्तक भी मस्तक नहीं है।

विशेषार्थ –आचार्य महाराज इसका दर्णन करते आ रहे हैं कि मानव का प्रत्येक अवयव किस-किस कार्य से महत्व प्राप्त करता है। इस पद्य में मुख और मस्तक के बारे में बतलाते हैं। आचार्य का कहना यह है कि अवयवों में मुख भी एक है। उसका महत्व तभी माना जायेगा जब वह काम-क्रोध आदि विकारों से रहित जो सर्वज्ञ वीतराग परम देव हैं, उनके गुण स्तवन करने से। और अवयवों में सर्वश्रेष्ठ जो मस्तक है, वह भी श्री जिनेन्द्र देव के चरणों में नत होने से ही श्रेष्ठ माना जायगा। अन्यथा नहीं। मनुष्यों का कर्त्तव्य यह है कि अपने सारे अवयवो को भगवान का सेवा में लगाकर लाभ उठाना चाहिए। नहीं तो सबके सब बेकार हैं।

[२०५]

आत्मा के साथ जाने वाला रोग अज्ञान ही है :–

उडन्पिरन्द मूबरोरुबनै च्चेबित्
तिडंकोण्ड सिन्नाल् इरुप्पर्–इडकोण्ड
इल्ल त्तिरुबर् ओलिय ओरुबने
सेल्लुं अबन्पिन् सिरन्दु

भावार्थ :–जन्म लेने वाले जोव के साथ काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भी पैदा होते हैं। फिर वे जीव का अपने अधीन बनाकर खुद शरीर के साथ निवास करते है। जब शरीर उस पर्याय से छूटने लगता है तो उसके साथ-साथ क्रोध आदि भी तात्कालिक रूप से निकल जाते हैं। मगर जो

मोहरूपी अज्ञान है वह तो बराबर जीव के साथ-साथ चलता ही रहता है।

विशेषार्थ :–संसारी जीव कर्म के साथ रहते हैं। कर्मों में मोहनीय कर्म बलवान है। याने कर्मों का राजा है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि मोहनीय कर्म के भेद हैं। यहां पर जीव जन्म लेते समय क्रोध, मान और माया आदि पैदा होना जो बतलाया जाता है वह तो व्यक्तित्व की अपेक्षा से है। शक्ति की अपेक्षा से तो सभी कर्म मौजूद रहते हैं। जीव के साथ जाते हैं और आते हैं। इसी को शास्त्रकार कार्मण शरीर कहते हैं। इसका मतलब यह है कि शक्ति की अपेक्षा से सभी कर्म जीव के साथ रहते हैं और दूसरी गति में जाते हैं। मगर व्यक्तित्व की अपेक्षा से जीव, मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया आदि को उपयोग में लाता है और वे भावी कर्म संचय का कारण बनते हैं। अतः हमें कर्म संचय के कारणभूत मिथ्यात्व आदि को बिनाश करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

[२०६]

क्रोध विजेता ही मुक्ति का पात्र है :–

कट्टे न च्चोल्लियक्काल् कप्पिल तीयेपोल्
पोट्ट प्पोडिक्कुं क्रोध त्तै–वेट्टे नक्
काय्त्तु वर क्कण्डक्काल् काक्कुन्तिरलारे
मोक्क मुडिवेय्दुवार

भावार्थ :–हमें कोई गुस्सा के साथ गाली दें, अथवा मारने के लिए दौड़ आवें, ऐसी हालत में जैसे पत्थर को रगडने से अग्नि कण निकलते हैं वैसे ही क्रोध उमड़ आ सकता है। फिर भी उसे जिसने दमन किया है वही मोक्ष का अधिकारी है और मुक्ति पाने योग्य है।

विशेषार्थ :–मनुष्य के अन्दर क्रोध आदि कषाय भाव मौजूद रहते हैं। जब आनन्द का विषय उपस्थित होता है तब आदमी खुशी के मारे फूला नहीं समाता और गुस्से के कारण भूत वस्तुयें उपस्थित होते समय तो क्रोध के मारे मारने और पीटने दौड़ता है। ऐसी अवस्था में मनुष्य आपे से बाहर हो जाता है। यदि ऐसे समय में भी उस क्रोध को जीतकर शान्त भाव को धारण करने वाला जो महान व्यक्ति है वही कर्म विजेता बनकर मोक्ष का पात्र हो सकता है। अन्य कदापि नहीं है।

[२०७]

मुक्ति पाने के उपाय :–

नल्विनै नार्का ल्विलङ् नवैसेय्युङ्
कोल्विनै यंजि क्कुयक्कलं–नल्ल
उरुधियुं अल्लवुं नाट्पेर् मर्प्पेर्
इरुधियिल् इन्बनेरि

भावार्थ :–पुण्य कार्यों को हमेशा करते रहो। दुःख देने वाले पाप कार्यों को मत करो। विशिष्ट आत्मलाभ को प्राप्त करो। उसके विपरीत अनात्मवाद को छोड़ दो। ये ही मोक्ष प्राप्त करने योग्य उपाय है।

विशेषार्थ :–हर व्यक्ति सुख चाहता है। दुनियां में दुःख चाहने वाले कोई भी नहीं हैं। पुण्य से सुख मिलता है और पाप से दुःख मिलता है। सुख चाहने वाले को चाहिए कि वे हमेशा पुण्य कार्य को करते रहें। दुःख को कोई नहीं चाहता। अतः पाप कार्य को कदापि न करें।

जीवन में आत्मवाद को प्राप्त करना अत्यावश्यक है। क्योंकि उसीं से आत्म सुख की प्राप्ति होती है। यही मनुष्य का अन्तिम ध्येय है। इस ओर ध्यान देनेवाला व्यक्ति कदापि इसके विपर्रात कार्य पर ध्यान नहीं देगा और करना भी नहीं चाहेगा। मतलब यह है कि सांसारिक सुख के लिए पुण्य कार्य और मोक्ष सुख के लिए आत्म कार्य करना है। पुण्य परंपरा से मोक्ष देता है। और आत्म कार्य साक्षात् मोक्ष का कारण है।

[२०८]

पुनर्जन्म को नाश करने के उपाय :–

परवै अरुंपोरुल् इन्सोल् मुदिरै
उरुधिक्कण् उन उण् विलंगु–सिरियन

नीरत्पुट् कुयक्कलं पुल्लवै ऊर्वदु
पेर्त्तीण्ड् वारा नेरि

भावार्थ :–गरीबों को अच्छे दान दो। सबसे मीठी बातें बोला करो। आत्मा को हित पहुँचाने वालेकार्यों को करते समय अस्थिर मत होओ। इन्द्रिय सुख को सुख मत मानो। दुर्जनों की सभा में मत जाओ। ये सब पुनंजनम को रोकने के उपाय हैं।

विशेषार्थ :–हर व्यक्ति सुख की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है। उसे पता नहीं चलता कि किस रास्ते से जाने पर सुख की प्राप्ति हो सकती है ? हां, साधारणतया सभी को यह बात मालूम है कि सत्कार्य करने से ही सुख को प्राप्ति होती है। मगर वह सुख निरन्तर हो या तात्कालिक हो, वह बात अलग है।

संसार में जन्म और मरण सबसे बड़ा दुःख है। इसे नाश करदें तो फिर दुःख का नाम तक नहीं रह सकता। मगर करे कैसे ? यह तो आसान नहीं है। लेकिन आचार्य यहाँ पर धर्म ध्यानरूपी सत्कार्य से जन्म मरण परपरा का नाश एवं मुक्ति का रास्ता बतलाते हैं। यह बात अनुचित नहीं है। शास्त्रकारों ने धर्म ध्यान से परंपरागत मोक्ष पाना है। यही श्रावकों के लिए अत्यन्त उपयोगी भी है। वे ये हैं–दान, दया, जितेन्द्रियत्व और आत्म निष्टता। इनमें लवलीन मानव को जन्म परंपरा नष्ट होने में कोई कठिनाई नहीं है।

[२०६]

अविनाशी सुख प्राप्त करने वालों का कर्त्तव्य :-

उट्कप्पडुमेलुत्तं ओरिरण्डावदे
नट्क प्पडुमेलुत्तं अत्तुणैये-ओट्टि
इलुक्का वेलुत्तो न्ट्रिमिल् कडल् तण्सेर्प्प
विलुच्चार्वु वेण्डु पवक्कुं

भावार्थ :-शब्दायमान ठंडे पारावार के किनारे वाले हे राजन् अविनाशी सुख प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले लोगों को चाहिए कि दो अक्षर वाले शब्दों (कर्म) से डरना है। और दो अक्षर वाले शब्दों पर प्रेम करना है (मुक्ति) तथा एक अक्षर वाले शब्दों पर दृढ़ रहना है (ॐ) 'ॐ' याने पंच परमेष्ठी का स्वरूप या आत्म ज्ञान हैं।

विशेषार्थ :-कभी भी नष्ट न हो, ऐसे सुख प्राप्ति की इच्छा रखने वाले व्यक्तियों को चाहिये कि कर्म से डरें। क्योंकि कर्म ही ऐसे सुख को रोक रखता है। तथा मुक्ति पर प्रेम करें। क्योंकि मुक्ति के ऊपर प्रेम करने-वाला ही कर्म से डरेगा और नित्य सुख के हेतु भूत सत्कार्य करेगा। तथा ओंकारमय आत्म-ज्ञान पर दृढ़ रहें। क्योंकि आत्मीय ज्ञान पर दृढ़ रहने से ही नित्य सुख की प्राप्ति होती है।

कर्म संसार का कारण है। अतः उससे डरना अतीव आवश्यकता है। वह कर्म दो अक्षर वाला है। तथा मोक्ष पर

प्रेम रखना चाहिए। क्योंकि मोक्ष भी दो अक्षर वाला है। जो मोक्ष पर प्रेम रखता है वही कर्म से डरता है। इन दोनों को साधने के लिए एक अक्षर वाला आत्म स्वरूप या पच परमेष्ठी स्वरूप जो ओंकार शब्द है, उससे च्युत न होकर उस पर दृढ़ रहना चाहिए। क्योंकि ये ही संसार निवृत्ति के मार्ग हैं और इन्हीं से इच्छा की पूर्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

[२८०]

त्यागियों की श्रेष्ठता एवं महानता :-

मुप्पेय मूंन्ट्रुं उडन्कूट्टि ओरिडत्तुत्
तप्पिय पिन्ट्रैर्त्त पेरोलित्तु-अप्पाल्
पेरु पेयरै क्काय प्पेरुबवेल् वैयत्तु
उरुपवनै एल्ला मोरुंगु

भावार्थ :-लोकमूढ, देवमूढ और पाषण्डिमूढताजो तीन मूढ हैं, उन्हें बड़ी सावधानी के साथ विचार कर हटाना है। उसके बाद अपने आत्मा के अन्दर जो अपनापन याने अहंमन्यता है। उसको भी निकालकर फेंक देना है। तदनन्तर उस त्यागी का नाम संसार में फैल जाता है। ऐसी उस ख्याति को त्यागने वाले महात्मा को अमूल्य संपत्तियां एक साथ मिल जाती हैं।

विशेषार्थ :-त्रिमूढ को त्यागने से आत्मा को सच्चे सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। सम्यक्त्व को प्राप्त करने के बाद अहंभावना को भी त्यागना है। उसके बाद वह संसार में

भगवान बन जाता है। ऐसी अवस्था में उसे अमूल्य ख्याति की प्राप्ति होती है। उस ख्याति को भी त्यागने वाले महात्मा अन्त में अनन्त ज्ञानादि अविनाशी गुणरूपी सपत्तियों को प्राप्त कर लेता है। फिर वह परमात्मा सिद्ध शिला पर पहुंचने के साथ-साथ नित्य एवं निरज़न अवस्था में विराजमान हो जाता है। यह उक्त पवित्र आत्मा की अन्तिम अवस्था है। फिर उसे कुछ करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह कृतकृत्य कहलाता है।

[२११]

संसार के लोगों से निन्दनीय व्यक्ति को त्यागी बनना ही अच्छा है :-

आट्रामै ऊर अरिविन्ट्र यादोन्ट्रु
तेट्रानेनप्पट्रु बालदलिन्-मार्ट्रि
मनैयिन् अगन्ट्रु पोय् मापेरुं काट्टिल्
ननैयिल् उडंबिडुल् नन्ट्रु

भावार्थ :-कोई व्यक्ति अपार दुःख के कारण अपनी आत्मा के हित को पहचानता नहीं है। ऐसे सभी लोगों से निन्दनीय व्यक्ति को चाहिए कि अपनी दुरावस्था को त्याग कर त्यागी बनें और क्रूर जीवों से भरे जंगल में चले जावें तथा अहित करने वाले अपने काय को त्याग दें।

विशेषार्थ :-मनुष्य को दो अवस्थायें होती हैं। एक अगार दूसरा अनगार। अथर, अगार अवस्था में उसका नाम नहीं है

तो उस अवस्था को त्यागकर अनगार अवस्था को ग्रहण कर लेना चाहिये। ऐसी हालत में उसे भयंकर जंगल में रहकर तप के द्वारा अपनी आत्मा को पवित्र करना है। फिर शरीर को भी त्यागकर उत्तम गति को प्राप्त करना है। यही मनुष्य का अन्तिम कर्त्तव्य है।

[२१२]

ये ही मेरे अपने (सच्चे) बन्धु हैं :-

नल्लरं एन्दै निरै येम्मै नन्गुणरुं
कलिवये न्तोलन् तुणिवेंबि-अल्लाद
पोय्च्चुदत्तारुं पोरुलो पोरुलाय
इच्चुट्र त्तारिल एनक्कु

भावार्थ :-सद्धर्म ही मेरे पिता हैं। सद्बुद्धि ही मेरी मां हैं। सत्य एवं हित को जानने हेतु भूत सद्विद्या ही मेरा दोस्त है। सत्परिणाम ही मेरा भाई है। ये ही मेरे सच्चे बन्धु हैं। झूंठे मां, बाप, भाई और दोस्त मेरे हित करने वाले नहीं है।

विशेषार्थ :-दुनियां में स्वार्थ और परमार्थ नामक दो चीजें होती हैं। व्यवहार में मां, बाप, भाई और दोस्त स्वार्थ के हैं। परमार्थ रूपी मां, बाप, भाई और दोस्त तो सद्धर्म, सद्बुद्धि, सद्विद्या एवं शुभ परिणाम हैं। अतः परमार्थ के ऊपर दृष्टि रखने वालों को चाहिए कि वास्तविक मां, बाप,

भाई और दोस्त को पहचान कर अथवा प्राप्त कर अपने आत्महित की ओर बढ़ते जावें।

[२१३]

झूंठे बन्धुगण एवं उनसे होने वाला अहित :–

मक्कले पेण्डिरुं मरुमक्कल ताय्तन्दै
ओक्क उडन्पिदार एन्ट्रिवर्गल् मिक्क
कडुंप कंयाग उल्लु उयिर्दान्
नेडुन्तडु माट्रत्तुल् निन्ट्रु

भावार्थ :–हमें पुत्र, मित्र, कलत्र, मातृ, पितृ, भ्रातृ एवं एवं पुत्रवधू आदि बन्धुगण तो हित करने वाले मालूम होते है। वास्तव में देखा जाय तो ये लोग हित करने के बदले भयकर अहित करने वाले हैं। आत्मा इन लोगों के सपर्क से सांसारिक विषय वासना में फंसकर असंख्य दुःखों को पाता है।

विशेषार्थ :–सांसारिक विषय वासना का मूल कारण पुत्र मित्र-कलत्रादि ही है। इन्हीं लोगों के कारण आत्मा हित अहित विचारों से दूर होकर भयंकर अत्याचारों को करने लगता है। इन लोगों के लिए धन कमाना, उस धन की रक्षा करना उसके व्यय हो जाने पर दुःखित होना यही प्रणाली चलती आ रही है। आत्मा इन पुत्र-कलत्रादि की प्राप्ति में सन्तुष्ट होता है और वियोग में दुःखित होता है। इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग तो संसार का स्वभाव है। इसी कारण से आत्मा अपनी

स्वभाव परिणति से बदलकर विभाव परिणति में आ जाता है। अतः सज्जनों का कर्त्तव्य यह है कि इस विषय वासना से मुक्त होकर सुखी बनने का अनवरत प्रयत्न करते रहना चाहिए। यही श्रेयस्कर है।

[२१४]

शरीर की अत्यावश्यकता :–

अलट्रगत्तु त्तामरैयाय् अमलर् इन्ट्रांगु
अलट्रुडं बामेनिनुं नन्ट्रां–अलट्रुडंबिन
नन्ज्ञानं नर्काटिच नल्लोलुक्कं एन्ट्रवै
तन्नाल् तलैप्पडुदलान्

भावार्थ :–जैसे पंकज वल्लो पंक से आगे निकलकर पंकज (कमल) को प्रदान करती है, वैसे ही (आत्मा) शरीर के साथ होने से ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यच्चारित्र की प्राप्ति पाती है। अतः शरीर मलमय होने पर भी उसी से काम बनता है और उसके बिना कुछ भी नहीं।

विशेषार्थ :–शरीर शुक्ल और श्रोणित से उत्पन्न होता है, सप्त धातुमय है तथा अशुचिपूर्ण है। मगर आत्मा (जीव) ऐसे शरीर के साथ ही रहता है। वह शरीर उस आत्मा के अच्छे और बुरे दोनों के लिये काम आता है। सांसारिक जीव बिना शरीर के न तो रह सकता है और न कुछ कर सकता है।

यदि आत्मा शरीर की अवस्था को न समझकर उसी में रम जाता है तो उसकीं गति मोक्ष नहीं है। अगर उसकी यथार्थता को समझ कर उस पर या ऐसे अन्य शरीर पर प्रेम (मोह) करना छोड़ दें और उससे रत्नत्रय प्राप्ति का काम लें तो आत्मा को भलाई होने में देर नहीं है। अतः आत्मा को अपने हित के लिये शरीर को सुरक्षित रखना अत्यावश्यक है।

[२१५]

मोह के कारण होने वाला दुःख :–

तेट्रमिल्लाद ओरुवनै प्पिन्निड्रांगु
आट्र नलिवर् इरुनालवर्-आट्रवुं
नल्ला र्पोल् ऐव र्पंकवलप्पाय् मूवराल्
सेल्लुं अवन्पिन् सिरन्दु

भावार्थ :–वस्तुओं के सच्चे स्वरूप को याने वस्तु स्थिति को न जानने वाले व्यक्ति (मिथ्यादृष्टि) को ज्ञानावरणादि आठों कर्म सतायेंगे। स्पर्शन, रसन घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँचों इन्द्रियाँ हित के रूप में अहित ही करेंगी। मन, वचन, काय ये तीनों अशुभ योग में लगेंगे, और जीव मरकर जन्मान्तर में भी दुःखों का भागो ही बनेगा।

विशेषार्थ :–मिथ्यात्व के कारण जीव अनन्त संसारी बनता है। ज्ञानावरणादि आठों कर्म उसके सबन्ध से छूटते नहीं, पांचों इन्द्रियां उसे दास बना लेती हैं। मन, वचन, काय ये

तीनों अशुभ योग में लगते हैं। इन कारणों से जीव को भयंकर कर्मों को संग्रह करना पड़ता है। और उससे भव में असहनीय दुःखों को भी भोगना पड़ता है।

[२१६]

सम्यग्ज्ञानी ही वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं :–

अरुविनैयुं आट्रुल् वरुपयनुं आक्कुं
इरुविनैयुं निन्ट्र विलैवुं–तिरिविन्ट्रिक्
कण्डुणर्न्दा क्कल्लदु काट्टतरु नाट्टतरुं
कोण्डुरैप्पान् ट्रिल् कुदर्

भावार्थ :–तप और उसका फल, लोगों से संगृहित शुभ कर्म और अशुभ कर्म, इन दोनों के फलस्वरूप सुख-दुःख, तथा इन सबको वास्तविक रूप में विचार करने की योग्यता, ये सब सम्यग्ज्ञानी को ही हो सकते हैं। और जो बाकी लोग हैं वे अनभिज्ञ हैं। उन्हें सागार और अनगार धर्मों की शिक्षा देना बेकार है।

विशेषार्थ :–पात्र दो तरह के होते हैं। पहला सुपात्र और दूसरा कुपात्र। सुपात्र कहें या सम्यग्ज्ञानी कहें दोनों एक ही हैं। सम्यग्ज्ञानी जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये वस्तुओं को तथा उनके स्वरूप को मानते हैं और जानते भी हैं। उन्हें शुभाशुभ कर्म और उनके फलस्वरूप पुण्य पाप, इन पर बड़ी आस्था है। और उसके अनुरूप चलते हैं। ऐसे सुपात्र को पुण्य और पाप

तथा उनके फलस्वरूप सुख-दुःख इन पर उपदेश देना लाभदायक है। अन्य जो कुपात्र हैं याने मिथ्या दृष्टि हैं, उन्हें धर्म के विषयों पर उपदेश देना बिल्कुल बेकार है।

[२१७]

अरनेरिच्चार से ज्ञान वृद्धि होती है :-

आदियि न्तोलसोर् अरनेरि च्चारत्तै
ओदियुं केट्टुं उणर्न्दवर्कुं च्-सोति
पेरुकिय उल्लत्त राय् विनैकल् तीर्न्दु
करुदियवै कूडल् एलिदु

भावार्थ :-भगवान आदिनाथ जो ऋषभ देव हैं, उनके यश को फैलाने वाले इस अरनेरिच्चार को जो व्यक्ति पढ़ते हैं और श्रद्धा से सुनते हैं, उन्हें अभीष्ट कार्य की सिद्धि आसानी से हो जाती है। वे घाति कर्मों को नाश कर चराचर वस्तुओं को युगपत् देखने और जानने योग्य केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। तथा अघाति कर्मों को भी नाश कर सिद्ध गति को प्राप्त कर लेते हैं।

विशेषार्थ :-सुख दो तरह के होते हैं। पहला इन्द्रिय जन्य और दूसरा आत्म जन्य। पहला जो है वह सुख नहीं, सुखाभास है। फिर भी सांसारिक जीव उसे सुख मानकर उसमें रम जाते हैं और उसे छोड़ना भी नहीं चाहते। दूसरा जो अविनाशी और आनन्दमय सुख है वह आत्मीय है, नित्य है, निरंजन है तथा

निर्विकारस्वरूप है। ऐसे जो परमानन्द सुख है, उसे संसार में अनासक्त आत्मार्थी पुरुष ही प्राप्त कर सकते हैं। अन्य नहीं। ऐसे जो आत्मार्थी हैं, वे यदि इस अरनेरिच्चार को अच्छी तरह पढ़ते और समझ लेते हैं तो उन्हें अपनी अभीष्ट सिद्धि याने मोक्ष प्राप्ति आसानी से हो जाती है।

[२१८]

अरनेरिच्चार मुक्ति को देने वाला है :-

एन्नूल कल ओदिनुं केट्पिनुं एन्सेय्युं
पोय्न्नूल अवट्रिन् पोरुल् तेरिन्दु-मेय्न्नूल्
अरनेरिच्चारं अरिन्दान्वीडेय्दुं
तिरनेरिच्चार न्तेलिन्दु

भावार्थ :-असत्यमय मिथ्या शास्त्रों को पढ़ने, सुनने और समझने से क्या फायदा ? जो व्यक्ति सत्यस्वरूप इस अरनेरिच्चार को पढ़ते, सुनते और समझते हैं, वे यथार्थ मार्ग के स्वरूप को जानने के साथ-साथ उस पथ पर चलकर मोक्ष गति को प्राप्त कर लेते हैं।

विशेषार्थ :-शास्त्र दो तरह के होते हैं। एक सुशास्त्र दूसरा कुशास्त्र। आचार्य का कथन यह है कि कुशास्त्र को पढ़ने, सुनने और समझने से कोई फायदा नहीं है। क्योंकि उससे संसार का अन्त नहीं होगा, बल्कि संसार परंपरा की वृद्धि

होगी। अतः ऐसे शास्त्रों को छोड़कर जो व्यक्ति इस अरनेरिच्चार को पढ़ेगा, सुनेगा और समझेगा वह शीघ्र ही पंचम गति (मोक्ष) को प्राप्त कर लेगा।

[२१६]

जिनेन्द्र भगवान के स्मरण से आपत्तियाँ दूर होती हैं :-

अवन् कोल् बवन्कोलेन्ट्रेय प्पाडते
सिवन्कण्णे सेयम्मिन्यल् सिन्दै-सिवन्ड्रानुं
निन्ट्रुकाल् सीक्कु निलरिकलुं पिण्डिक्कील्
नेन्ट्रिच्ची मुंक्कुडैयान् वेन्दु

भावार्थ :-आप्त कौन है ? यह है या वह है। ऐसा संदेह नहीं करना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान ही आप्त है। अन्य कोई नहीं है। इस तरह निश्चय कर लेना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान तो सभी लोगों के दुःखों को दूर करने वाले हैं। दयामय हैं। अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान हैं। विजय पताका रूप छत्र त्रय से अलंकृत हैं। इस तरह के लक्षणों से शोभायमान अरहंत परमात्मा ही आप्त है अन्य नहीं।

विशेषार्थ :-सम्यक्त्व के आठ अंग कहे गये हैं। उनमें निःसकित अंग पहला है। उसके बिना कोई भी व्यक्ति सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकता। अतः मनुष्य को चाहिए कि आप्त को पहचान कर उस पर दृढ़ श्रद्धान करना है। आप्त तो अठारह दोषों से रहित है। सर्वज्ञ हैं; आगम के ईश हैं, शुद्ध हैं, बुद्ध हैं,

निस्पृही हैं, निर्विकार हैं। ऐसे उत्कृष्ट गुणों से शोभायमान अरहन्त परमात्मा ही आप्त हैं, अन्य नहीं हैं। इस तरह के दृढ़ श्रद्धान से ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। उसी से मनुष्य सम्यग्ज्ञानी बनकर मोक्ष का पात्र बनता है। अन्यथा नहीं।

[२२०]

भगवान के गुणगान से प्राप्त पुरस्कार :–

मुनैप्पाडि यानेच्चू मुक्कडै च्चेल्वन्
ट्रनैप्पाडि वन्देर्कुं न्तन्द परिसिल्
विनैप्पाडु कट्टलित्तु वीट्रिन्ब नलिक
निनैप्पाडि वन्दोर्क्कुं नीमीग वेन्ट्रान्
निरैविलक्कु प्पोलिरुन्दु

भावार्थ :–तिरुमुनैप्पाडी नाम के स्थान (किसी गांव का नाम है) पर विराजमान, आप्त गुणों से अलंकृत तीन छत्र त्रयों से शोभायमान जो अरहन्त देव हैं, उनके गुणगान से प्राप्त पुरस्कार ये हैं कि कर्मों की संगति से मुक्त होने के साथ-साथ मोक्ष लक्ष्मी का सुख भी मिलने वाला है। अलावा इसके मणिमय दीपक के समान देदीप्यमान होकर रहने का सौभाग्य प्राप्त है। तथा इनकी संगति में आनेवाले व्यक्ति यदि यथार्थ रूप में गुणग्राही रहेंगे तो उन्हें सम्यग्ज्ञान का सदुपदेश मिलता है। यही उक्त भगवान का समीचीन पुरस्कार है।

विशेषार्थ :–इस ग्रन्थ के रचयिता "तिरुमुनैप्पाडियार" अन्त में अपने इष्टदेव जिनेन्द्र भगवान के बारे में कहते हैं कि वे आप्तगुणों से परिपूर्ण एवं छत्र त्रयों से अलंकृत हैं। उनके चरणों में जाने वाले व्यक्ति कर्मों को निर्मूलन कर मोक्ष लक्ष्मी का नायक बन जाता है। अलावा इसके जिनेन्द्र देव का उपदेश यह है कि यदि तुम्हारे शरण में कोई आयगा तो उन्हें भी कर्मों से निर्मुक्त कराना और मोक्ष लक्ष्मी का पात्र बनाना है जिससे मोक्ष परपरा बराबर बनी रहेगी। यही सच्चे धर्मात्माओं का कर्त्तव्य है। इस तरह का जो परमोपदेश है वही भगवान जिनेन्द्र देव का वास्तविक पुरस्कार है।

(२२१)

भगवान का लक्षण :–

अरुल् वट्टमाग अरिवु कदिराय्
पोरुलवट्ट मेल्लां विल.क्क–इरुल्वट्टं
माट्रु अरिवान ज्ञान वलरोलियान्
वेट्रिलिङ् कन्तोन्ट्रुं वेरु

भावार्थ :–सारे संसार में करुणास्वरूप हो। केवल ज्ञान के किरणों से भरा हुआ हो, दृढ़ श्रद्धान को प्रदान करने वाले सभी पदार्थों को प्रकाशमान करने वाला हो, अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करने वाला हो, कर्म पटलों से रहित ज्ञान भानु से देदीप्यमान हो ऐसे अरहन्त देव को नमस्कार हो। उनसे विपरीत मिथ्या मत के सारे दोष इससे ज्ञात होते हैं।

विशेषार्थ :–संसार के अन्दर प्रत्येक मतवाले अपने लिये एक-एक देव (भगवान) को मानते हैं। मगर भगवान बनने के लिये जो गुण होना चाहिए वे गुण उनके भगवान के अन्दर मौजूद नहीं है। फिर भगवान कैसे बन सकते हैं? भगवान बनने के लिये नीचे लिखे गुणों की आवश्यकता पड़ती है। जैसे करुणामय हो. सर्वज्ञ हो. केवलज्ञानी हो, पदार्थों को यथावत् प्रकाशमान करने वाला हो, अज्ञानरूपी अन्धकार को नाश करने वाला हो, कर्म रहित हो ऐसे व्यक्ति ही भगवान हो सकता है। अन्य नहीं। ये सारे गुण अरहंत भगवान ही सम्यक्त्व के सारे गुण और मिथ्यात्व के सारे दोषों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। जिससे मिथ्यात्व को हटाने एवं सम्यक्त्व प्राप्ति करने का मार्ग मिल सकता है।

[२२२]

लोक मूढ :–

मामांग माडल् मणक्कुं वित्तल् काल्लेडुदल्
तामोङ गुयर्वरैमेर् सार्वालिदल क।मङकोण
डाडो डेरुमे यदत्तल इवैयुलग
मूडं एनवुपरर धाट्रु

भावार्थ–पुण्य प्राप्ति के निमित्त मामांग नामक तालाब में में स्नान करना, रेत को शिवलिंग के समान बनाकर उस की पूजा करना, पुण्य की दृष्टि से कुछ स्थान पर पत्थर गाडना, मोक्ष प्राप्ति के निमित्त पर्वत के उपर से गिरकर मरना, स्वार्थ

के वशीभूत होकर गाय, बकरी, भैंस आदि पशुओं की बलि देना ये सब लोक मूढ में गिना जाता है।

विशेषार्थ–सम्यक्त्व के पच्चीस दोषों मेंलोकमूढ़ताभी एक है। उसमें यह बात बतलाई जाती है कि पाप को मिटाने एवं पुण्य पाने के लिए गंगा आदि नदी, मामांग नामक तालाब आदि में नहाना, रेत को शिवलिंग के रूप में बनाकर उस की पूजा करना, नदी में पैसा फेंकना, कुछ स्थान पर पुण्य समझ कर पत्थर गाडना. पर्वत के उपर से गिरकर मरने से भगवान बन जाते हैं या मोक्ष प्राप्ति हो जाती है इस मान्यता के अनुसार गिरकर मरना, अज्ञानता के साथ इस तरह अविवेकपूर्ण जो कार्य किया जाता है, उसे लोकमूढ कहते है। सम्यग्दृष्टि इस तरह के कार्य को कदापि नहीं करता है। जो व्यक्ति करता है उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। वह मिथ्यादृष्टि बनकर रह जाता है।

[२२३]

जिनेन्द्र भगवान का धर्म ही फलदायक है :–

शंकरन् नान्मुगन् शंकरन् पूरणन्
बुद्धन् कपिलन् बाणाधरनेन्–ट्रेत्तिरन्
तेकान्त वादिम लेणकेट्ट आदन्पोल्
आकादम् आत्त न्ट्रुणिनु

भावाथ :–विष्णु, ब्रह्मा, शिव पूरण, बुद्ध, कपिल कणाद आदि लोगों के कथन (सिद्धांत) में एकांत वाद होने से उससे कोई लाभ नहीं मिल सकता। वह सिद्धांत ज्ञानहीन मूर्खों के तर्कवाद के समान है। मगर अनेकान्तमय अरहन्त भगवान के सिद्धांत को ऐसा नहीं समझना चाहिए। इसमें एकान्तवाद नहीं है।

विशेषार्थ :–वाद दो तरह के होते हैं। एकान्तवाद और अनेकान्तवाद। एकान्तवाद में वस्तु का निर्णय नहीं हो सकता। अनेकान्तवाद में ही वस्तुतत्व का निर्णय होता है। बुद्ध, कपिल और काणाद आदि लोग एकान्तवादी हैं। अरहन्त भगवान अनेकान्तवादी हैं। एकान्तवादियों का सिद्धांत असत् याने मिथ्या होने से निष्फल है। अरहन्त भगवान के वाद अनेकान्तमय होने से सत्य एवं फलदायी है।

[२२४]

मानवों का स्वभाव :–

कडंबन्ट्रान् ट्रन्नोडु कांपडुत्तोल् वल्लि
उडम्बिनुड् कूट्टमदुवु वन्दु केट्पर्–अडंगिक्
कोडुत्तुण्मिन् कोण्डोलुक्कं काणुमिनेन्बार मोल्
अडुप्पेट्रि यामैने न्तट्रु

भावार्थ :–'षन्मुख' और उसकी पत्नी 'वल्ली' की कथा को लोग रातभर जागते-जागते प्रेम से सुनेंगे। मगर भोख

मांगने वाले भिखारी को अन्नदान दीजिए, सदाचार के मार्ग पर चलकर सत्य को पहचानिये। इस तरह की धार्मिक बातों को सुनने वाले लोग ऐसे तड़पते हैं जैसे जलते हुए चूल्हे के घड़े में तड़पने वाले कर्म के समान।

विशेषार्थ :–दुनियां में लोग मिथ्या कथा को सुनने में दिलचस्पी लेते हैं। दक्षिण के 'षन्मुख' और उसकी पत्नी 'वल्ली' की कथा को तो रात भर सुनेंगे उसे सुनने में नींद नहीं आयगी। परन्तु दान-पुण्य करो। सदाचार को पालो। सत्य मार्ग पर चलो। इस तरह की धार्मिक बातों को कहा जाय तो लोग सुनेंगे नहीं। भागने के लिए तैयार रहेंगे। मतलब यह है कि लोगों को धार्मिकता नहीं रुचती। बल्कि अधार्मिकता रुचिकर रहती है।

[२२५]

रत्नत्रय का महत्व :–

नञ्ज्ञान नर्काट्रिच नल्लेमलुक्कमेन्ट्रिवै
तन्ना न्मुडित्तारा निल्लेये पोन्नेपोल्
आवट्टञ् चेय्द वणिकल न्तेयकिर्पो
लाय्वट्ट निल्ला दुडम्बु

भावार्थ :–मनुष्य का कर्त्तव्य यह है कि साफ किये गये शुद्ध सोने से बने आभूषणों को शरीर में पहनकर शोभायमान होने के समान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यच्चारित्र रूपी

सच्चे आभूषणों को धारण कर अपनी आत्मा को मोक्ष प्राप्त कराना चाहिए। नहीं तो वृथा जलकर भस्म होने वाली लकड़ी के समान मुश्किल से प्राप्त मनुष्य जन्म व्यर्थ में ही नष्ट हो जायगा।

विशेषार्थ :–सोने के आभूषणों से शरीर अलंकृत होता है। मगर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यच्चारित्ररूपी मणिमाला से मनुष्य पर्याय ही अलंकृत हो जाती है। जिससे उसे मोक्ष की प्राप्ति मिल जाती है। नहीं तो मनुष्य पर्याय बेकार नष्ट हो जाती है। इसका मतलब यह है कि आभूषणों को पहनकर नष्ट होनेवाले शरीर को अलंकृत करने की अपेक्षा, रत्नत्रय को धारण कर मनुष्य पर्याय को सफल बनाना विवेकी मानव का कर्त्तव्य है।

[२२६]

धर्म मार्ग पर ध्यान देना अपना कर्त्तव्य है :–

नालिरकि र्कण्णिल तेयेनिनु नन्पोरुलिन्
पेरिरैया नुप्पेयरि पिचिरक्कु मोरिरण्
डिरकि र्कण्णुलते येनिनु मदनै
वेरुण्डु विलंगाम र्का

भावार्थ :–भगवान अरहन्त परमेश्वर को भक्ति से गुणगान करने वाली आत्मा, उक्त भगवान से कहे गये परम आगम मार्ग पर चलकर अत्युत्तम मोक्ष प्राप्ति कर लेती है। अतः नेत्रेन्द्रियों

को धारण करने वाले मानव को चाहिए कि नष्ट होने वाले ऐन्द्रिक सुखों में अनासक्त रहें तथा अरहन्त परमात्मा से उपदिष्ट सदाचार मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सफल बनावें।

विशेषार्थ :–सम्यग्दृष्टि जीव ही भगवान अरहन्त देव को भक्ति-भाव से गुणगान करता है और उनके यथार्थ मार्ग पर चलकर आत्म कल्याण भी कर लेता है। अन्य मिथ्यादृष्टि जीव ऐन्द्रिक सुखों में अपना जीवन बिताने से, उक्त सम्यग्दृष्टि के विपरीत रहता है। स्वभावतः पांचों इन्द्रियों में नेत्रेन्द्रिय सबसे बलवान है। कहा भी है कि "सर्वेन्द्रियाणां नयन प्रधानं' मनुष्य पतित होने का सबसे बड़ा कारण नेत्रेन्द्रिय ही है। अतः नेत्रेन्द्रियधारी मनुष्यों को संबोधन कर बतलाते हैं कि ऐन्द्रिक सुखों पर आसक्ति मत रखना। जिसके कारण मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। यदि आत्म कल्याण करना है तो अरहन्त भगवान से कहे गये अरहन्त मार्ग पर चलो और अविनाशी परमपद पाओ। यही उत्तम है।

भद्रंभूयात्

आचार्य वर्य मुनैप्पाडियार से विरचित श्री अरनेरिच्चारं (नीतिमार्गसार) संपूर्ण अभूत्

श्रीअस्तु

माँ जिनवाणी स्तुति

माँ जिनवाणी ममता न्यारी, प्यारी प्यारी गोद है थारी ।
आँचल में मुझको तू रख ले, तू तीर्थंकर राजदुलारी ।।टेक।।
वीर प्रभो पर्वत निर्झरणी, गौतम के सुख कंठ झरी हो ।
अनेकान्त और स्याद्वाद की, अमृतमय माता तुम ही हो ।
भव्यजनों की कर्णपिपासा, तुझसे शमन हुई जिनवाणी ।।१।।
माँ जिनवाणी.....

सप्तभंग मय लहरों से माँ, तू ही सप्त तत्व प्रकटाये ।
द्रव्य गुणों अरू पर्यायों का, ज्ञान आतमा में करवाये ।
हेय ज्ञेय अरु उपादेय का, भान हुआ तुमसे जिनवाणी ।।२।।
माँ जिनवाणी.....

तुझको जानूँ तुझको समझूँ, तुझसे आतम बोध को पाऊँ ।
तेरे आँचल में छिप-छिपकर दुग्धपान अनुयोग को पाऊँ ।
माँ बालक की रक्षा करना, मिथ्यातम को हर जिनवाणी ।।३।।
माँ जिनवाणी.....

धीर बनूँ मैं वीर बनूँ माँ, कर्मबली को दल-दल जाऊँ ।
ध्यान करूँ स्वाध्याय करूँ बस, तेरे गुण को निशदिन गाऊँ ।
अष्ट करम की हान करे यह, अष्टम क्षिति को दे जिनवाणी ।।४।।
माँ जिनवाणी.....

ऋषि मुनि यति सब ध्यान धरे माँ, शरण प्राप्त कर कर्म हरें ।
सदा मात की गोद रहूँ मैं, ऐसा शिर आशीष फले ।
नमन करें ''स्याद्वादमती'' नित, आत्म सुधारस दे जिनवाणी ।।५।।
माँ जिनवाणी.....

–गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माताजी

गणिनी आर्यिका स्याद्वादमती माताजी द्वारा लिखित एवं सम्पादित

१. स्याद्वाद बाल शिक्षा भाग १
२. स्याद्वाद बाल शिक्षा भाग २
३. स्याद्वाद बाल शिक्षा भाग ३
४. स्याद्वाद बाल शिक्षा भाग ४
५. नैतिक संस्कार भाग १, २, ३
६. भक्तामर स्तोत्र प्रश्नोत्तरी
७. छहढ़ाला प्रश्नोत्तरी
८. द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तरी
९. रत्नकरण्डश्रावकाचार (सम्पादन, अनुवाद)
१०. लघु पञ्चस्तोत्र
११. मोक्षशास्त्र प्रश्नोत्तरी
१२. अमोल रत्न
१३. अद्भुत शक्ति (नारी)
१४. कर्त्तव्य पथ की ओर
१५. मर्यादा की रक्षा
१६. दुखों का मूल
१७. मानव जीवन
१८. तत्त्वार्णव (सप्त तत्व)
१९. वैराग्य की ओर (नाटक)
२०. मान्य खेट के हीरे (नाटक)
२१. सत् पथ की ओर (नाटक)
२२. युगल आचार्य पूजा
२३. रयणसार (सम्पादन, अनुवाद)
२४. ध्यान सूत्राणि (सम्पादन, अनुवाद)
२५. भक्ति मुक्ति सोपान
२६. विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका (वि० भक्ति अर्थ)
२७. श्रीमद् भगवद् जिनसहस्रनाम पूजा विधान
२८. सुभौम चक्रवर्ती
२९. शील-कलश (उपन्यास)
३०. जिनदत्त चरित्र
३१. वात्सल्य रत्नाकर भाग १, २, ३ (सम्पादन)
३२. बालबोध स्तुति शिक्षा (अनुवाद)